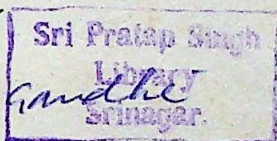


आरोग्य-सन्देश

(स्वास्थ्य पर महात्मा गाँधी के अनुभव)



लेखक

महात्मा गान्धी



प्रथमवार]

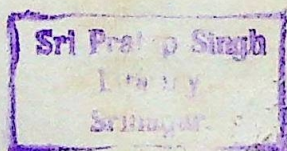
सन् १९४०

[मूल्य १]

प्रकाशक
आश्विनी कुमार दत्त,
प्रोफ़ाइटर
हिन्दी-साहित्य-भंडार,
७, चितपुरस्पर, कलकत्ता ।

47
acc: no 14285

Rs 1-9-



SPS

613 G 14 A



14285

मुद्रक:—

एम. एन. ठुलल,
फेडरल ट्रेड प्रेस,
नया बाजार, दिल्ली ।

निवेदन

हमें स्वास्थ्य सम्बन्धी बहुतसी पुस्तकें पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उन सब में हमें प्रस्तुत पुस्तक अच्छी और उपयोगी मालूम हुई है। इसमें अन्य पुस्तकों की तरह अटकलपच्चू नुस्खे नहीं लिखे गये हैं। इस पुस्तक में विश्ववन्ध महात्मा गान्धी के बीस वर्ष के प्रयोगों और उनसे प्राप्त अनुभवों का ही वर्णन किया गया है। इसके प्रयोग इतने सहज और सुलभ हैं कि इन्हें गरीब से गरीब और अमीर से अमीर आदमी आसानीसे काममें ला सकता है जो लोग इस विषय की दूसरी पुस्तकें पढ़कर उनके प्रयोगों से निराश हो चुके हैं उनसे हमारा आग्रह है कि वे एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें और उसके अनुसार आचरण करें। हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि वे ऐसा करेंगे तो उन्हें डाक्टर या वैद्यों का दरवाजा नहीं खटखटाना पड़ेगा। और उनका जीवन सुखमय हो सकेगा और वे चैन से जिन्दगी व्यतीत कर सकेंगे।

—प्रकाशक।

विषय-सूची

17-1-09

पहला भाग

पृष्ठ

१. आरोग्य	...	...	...	...	२
२. हमारा शरीर	...	...	...	...	५
३. वायु	...	...	...	...	८
४. जल	...	...	...	...	१७
५. भोजन	...	...	...	...	२१
६. हमें कितना और कितनी बार खाना चाहिए	...	...	...	...	४६
७. व्यायाम	...	...	...	...	५०
८. पोशाक (पहिनावा)	...	...	...	...	५६
९. पुरुष-स्त्री का संयोग	...	...	...	...	६१

दूसरा भाग

१. वायु-चिकित्सा	...	...	...	...	७३
२. जल-चिकित्सा	...	...	...	...	७६
३. मिट्टी का उपचार	...	...	...	...	८४
४. ज्वर और उसका इलाज	...	...	...	...	८८
५. कब्ज, संग्रहणी, पेचिश और बवासीर	...	...	...	...	९२
६. छूत के रोग—शीतला (चेचक)	...	...	...	...	९५
७. छूत के अन्य दूसरे रोग	...	...	...	...	१०४
८. सौरी और ज़च्चा-बच्चा	...	...	...	...	१०६
९. शिशु-पालन	...	...	...	...	११३
१०. कुछ आकस्मिक घटनायें	...	...	...	...	११६
डूबना, जलना, सर्प का काटना, बिछू का काटना	...	...	...	...	
११. उपसंहार	...	...	...	...	१३४

प्रस्तावना

बीस वर्ष से भी अधिक समय से मैं स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों पर विचार करता रहा हूँ। जब मैं इंग्लैंड में था, तब अपने विशेष रहन-सहन के कारण मुझे अपने खाने-पीने का खास प्रबन्ध करना पड़ता था। इन कारणों से मेरा जो कुछ अनुभव इस विषय में हुआ है, उसे सत्य ही मानना चाहिए। उसी अनुभव के आधार पर मैंने कुछ खास विचारों को स्थिर किया है और उन्हीं को अपने पाठकों के लाभार्थ लिख रहा हूँ।

अंग्रेजी में एक कहावत है कि “रोग दूर करने की अपेक्षा उसे न होने देना ही अच्छा है”। रोगों को होने देने से उसे रोक देना बहुत सुगम तथा लाभदायक है। क्योंकि वे अधिकांश में हमारी अज्ञानता तथा असावधानी से हुआ करते हैं। अतः यह सभी विचारशील मनुष्यों का कर्तव्य है कि वे स्वास्थ्य के नियमों को अच्छी तरह समझें। इस पुस्तक के लिखने का मुख्य उद्देश्य उन्हीं नियमों को समझाना है। साथ ही कुछ साधारण रोगों का उपचार भी बतलाना है।

एक अंग्रेजी विद्वान मिल्टन का कथन है कि हम चाहें तो स्वर्ग को नर्क और नर्क को स्वर्ग बना सकते हैं। यह बात हमारे आधीन है। स्वर्ग कहीं आसमान में नहीं है, और न नर्क कहीं जमीन के अन्दर। यही बात एक संस्कृत के श्लोक में भी कही गयी है कि “मन एवं मनुष्याणाम् कारणम् बन्ध मोक्षयः” अतः रोगी

या नीरोग रहना मनुष्य के अधिकार की बात है। रोग केवल हमारे ही कर्मों का फल नहीं है, बल्कि विचारों का भी फल है। जैसे कि एक डाक्टर का कहना है कि मनुष्य चेचक, कालरा और प्लेग की अपेक्षा उन के भय से अधिक मरते हैं। यह बिलकुल सत्य है कि डरपोक लोग अपनी मृत्यु के पहले कई बार मरते हैं।

अज्ञानता ही प्रायः रोगों का कारण हुआ करती है। बहुधा साधारण रोग में भी उसका उपचार न जानने के कारण हम घबड़ा उठते हैं और उससे छुटकारा पाने के लिए उल्टा-सुल्टा उपचार कर भयंकर फल उपस्थित कर देते हैं। स्वास्थ्य के साधारण नियमों को न जानने के कारण हम गलत औषधि का प्रयोग करते हैं या किसी अनाड़ी वैद्य की शरण लेते हैं। कितनी आश्चर्य की बात है कि हम अपने पास की वस्तुओं की जानकारी दूर की वस्तुओं की अपेक्षा बहुत कम रखते हैं, हम बहुधा अपने गाँव या मुहल्ले के विषय में कुछ नहीं जानते, लेकिन इंग्लैंड के पहाड़ और नदियों के बारे में भलीभाँति बतला सकते हैं। हम आसमान के तारों के विषय में जानकारी प्राप्त करने का तो उद्योग करते हैं; लेकिन अपने घर की चीजों के बारे में नहीं। हम प्रकृति के अनुपम नाटक की ओर तो ध्यान नहीं देते, लेकिन मनुष्यकृत नाट्यशाला को देखने के लिए बेचैने रहते हैं। हम अपने शरीर की रचना—जैसे हड्डियाँ कैसे बढ़ती हैं, खून का दौरा कैसे होता है, एवं किस प्रकार दूषित हो जाता है, किस प्रकार बुरी भावनाओं में पड़कर हमारी इन्द्रियाँ उत्तेजित होती

हैं, किस प्रकार हमारे मस्तिष्क को आराम मिलता है आदि विषयों की अनभिज्ञता पर लज्जित नहीं होते। शरीर से बढ़कर हम से घनिष्टता रखनेवाली कोई दूसरी वस्तु नहीं है। परन्तु आश्चर्य है कि उससे जितना हम अनभिज्ञ हैं उतना और किसी चीज से नहीं।

यह हमारा कर्तव्य है कि इस कठिनाई को दूर करें। प्रत्येक व्यक्ति का यह धर्म है कि वह अपने शरीर के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान रखे। हमारे स्कूल में भी ऐसी शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। अभी हमें साधारण फोड़े फुन्सियों का भी उपचार नहीं मालूम है; यहाँ तक कि यदि हमारे पैर में काँटा चुभ जाय, तो हम अपनी असमर्थता दिखलाते हैं। यदि हमें साँप काटले तो हम बिलकुल घबड़ा जाते हैं। यदि इन विषयों पर हम अपनी अज्ञानता का विचार करें, तो हमें लज्जा से अपना सिर नीचा करना पड़ेगा। यह कहना कि साधारण मनुष्य इन बातों को नहीं जान सकता, हमारी निरी मूर्खता है। यह पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गयी है कि जो इन विषयों को जानना चाहेंगे, आसानी से जान सकेंगे।

हमारे कहने का यह मतलब कदापि नहीं है कि जो कुछ भी मैंने इस पुस्तक में लिखा है उसे पहले किसी ने नहीं बतलाया। इसमें पाठकों को खास बात यह मिलेगी कि बहुतेरी पुस्तकों के पढ़ने के बाद तथा निजी अनुभव प्राप्त करने के बाद यह पुस्तक सिलसिले वार लिखी गई है। इसके अतिरिक्त वे लोग

या तीरोग रहना मनुष्य के अधिकार की बात है। रोग केवल हमारे ही कर्मों का फल नहीं है, बल्कि विचारों का भी फल है। जैसे कि एक डाक्टर का कहना है कि मनुष्य चैकन, काकड़ा और सेग की अपेक्षा उन के भय से अधिक मरते हैं। यह बिल्कुल सत्य है कि डरपोक लोग अपनी मृत्यु के पहले कई बार मरते हैं।

अज्ञानता ही प्रायः रोगों का कारण हुआ करती है। बहुधा साधारण रोग में भी उसका उपचार न जानने के कारण हम घबड़ा उठते हैं और उससे छुटकारा पाने के लिए उल्टा-सुल्टा उपचार कर भयंकर फल उपस्थित कर देते हैं। स्वास्थ्य के साधारण नियमों को न जानने के कारण हम रात-रात औषधि का प्रयोग करते हैं या किसी अनाड़ी वैद्य को शरण लेते हैं। कितनी आश्चर्य की बात है कि हम अपने पास की वस्तुओं की जानकारी दूर की वस्तुओं की अपेक्षा बहुत कम रखते हैं, हम बहुधा अपने गाँव या मुहल्ले के विषय में कुछ नहीं जानते, लेकिन इंग्लैंड के पहाड़ और नदियों के बारे में भली-भाँति बतला सकते हैं। हम आसमान के तारों के विषय में जानकारी प्राप्त करने का तो उद्योग करते हैं; लेकिन अपने घर की चीजों के बारे में नहीं। हम प्रकृति के अनुपम नाटक की ओर तो ध्यान नहीं देते, लेकिन मनुष्यकृत नाट्यशाला को देखने के लिए बेचैनी रहते हैं। हम अपने शरीर की रचना—जैसे हड्डियाँ कैसे बढ़ती हैं, खून का दौरा कैसे होना है, एवं किस प्रकार दूषित हो जाता है, किस प्रकार बुरी भावनाओं में पड़कर हमारी इन्द्रियाँ उत्तेजित होती

जिनके लिये यह एक नया विषय है, ऐसी विरोधी बातों में पड़ने से बच सकते हैं। जिसमें एक ही रोग में किसी डाक्टर की राय है कि गर्म पानी का प्रयोग होना चाहिये और कोई कहता है कि नहीं, ठंडे पानी का। ऐसे विरोधी विचारों पर मैंने पूर्ण विचार करके अपना एक निश्चित मन स्थिर किया है और तब उसका वर्णन इसमें किया है ताकि इसके पढ़ने वाले इसमें कहे हुए बातों पर पूर्णतः विश्वास करें।

साधारण रोगों में भी हमें डाक्टर की शरण लेने की आदत-सी पड़ गई है। जहां डाक्टर नहीं हैं वहाँ हम पड़ोसियों की राय से दवा करने लगते हैं। हम विश्वास कर लेते हैं कि बिना औषधि के यह रोग दूर नहीं हो सकता। अन्य कारणों की अपेक्षा हमें इस कारण से अधिक दुख उठाना पड़ता है। हाँ, हमारा रोग छूट जाय यह आवश्यक है, लेकिन वह औषधि से नहीं हट सकता, क्योंकि कभी-कभी औषधि निष्फल ही नहीं वरन् हानिकारक भी सिद्ध हो जाती है। जड़ी-बूटी या औषधियों से रोग को दवा देना ठीक वैसे ही है जैसे कि घर में पड़े कूड़े को ढक रखना। क्योंकि कूड़े को जितना ही अधिक ढक रखने का हम उद्योग करते हैं, उतना ही वह शीघ्रता से सड़ कर अपना गन्ध फैलाता है। ठीक यही बात रोग को दवाने से भी होती है। अतः बुद्धिमानी यही हो सकती है कि प्राकृतिक ढंग से कूड़े और रोग को साफ किया जाय। रोग द्वारा प्रकृति हमें सूचित करती है कि हमारे अन्दर गन्दगी, जो रोगों का घर

है इकट्ठा हो रही है और उसे हमें प्राकृतिक क्रिया द्वारा हटाना चाहिए। न कि औषधियों द्वारा उसे शरीर के अन्दर ही दबा देना चाहिये जो लोग औषधियों के द्वारा रोग को हटाना चाहते हैं, वास्तव में वे प्राकृतिक क्रिया को और भी कठिन बनाते हैं। उपवास द्वारा हम प्राकृतिक क्रिया को और भी शक्तिशाली बना सकते हैं। इससे हमारे शरीर में गन्दगी इकट्ठा न होने पावेगी। हम अपने शरीर की अधिकांश गन्दगी खुली हवा में रह कर या शरीर से पसीना निकाल कर साफ कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अपने मन पर अधिकार रखना नितान्त आवश्यक है।

हम प्रायः यह देखते हैं कि यदि घर में एक बार भी औषधि की बोतल का प्रवेश हुआ कि उसकी संख्या और भी बढ़ने लगती है। हम बहुतों को आजन्म रोग ग्रसित पाते हैं, यद्यपि वे सदैव औषधियों का प्रयोग करते रहते हैं। प्रायः वे आज इस डाक्टर की तो कल उस डाक्टर की दवा करते ही रहते हैं। वे जीवन भर ऐसे डाक्टर की खोज में लगे रहते हैं, जो उन का रोग सदैव के लिए दूर कर दे। स्वर्गीय जज स्टीवन (जो कुछ दिन हिन्दुस्तान में था) कहा करता था कि बड़े आश्चर्य की बात है कि जिन जड़ी-बूटियों से वैद्य लोग अनभिज्ञ हैं, वे उन्हीं को औषधि के रूप में शरीर में पहुँचाते हैं। पूर्ण अनुभव प्राप्त कर पश्चात् डाक्टर लोग भी अब यही कहते हैं। सर अस्टली कूपर का कहना है कि औषधियों का ज्ञान केवल काल्पनिक है। सरजान फारब्ज का कहना है कि बहुत-सी औषधियों के

होते हुए भी रोग अधिकतर प्राकृतिक नियमानुसार ही दूर किया जा सकता है। डा० फ्रेक तथा डा० वेकर की यह धारणा है कि अधिकांश रोगी रोग से नहीं बल्कि औषधि के कारण मर जाते हैं। डा० मेसनगुड ने तो यहाँ तक कह डाला है कि युद्ध और अकाल से जितने लोग नहीं मरते, उससे कहीं अधिक औषधि के प्रयोग से मरते हैं !

यह भी एक अनुभव की बात है कि जिस स्थान पर जितना ही अधिक डाक्टर की संख्या बढ़ती है, उतने ही हमारे रोग भी बढ़ते जाते हैं। औषधियों का प्रचार इतना अधिक बढ़ गया है कि साधारण से साधारण पत्रों में भी उनके विज्ञापन पाये जाते हैं। एक नयी प्रकाशित पुस्तक में यहाँ तक लिखा गया है कि हम सिरप, फ्रूट साल्ट, सार्सापरिला जैसी पेटेन्ट औषधियों का मूल्य केवल दो रुपये से ५) तक ही लेते हैं। पाठक यह नहीं जानते कि इन औषधियों का वास्तविक मूल्य केवल एक या दो आना होता है। इसी से उनके बनाने की क्रिया गुप्त रखी जाती है।

उपरोक्त कारणों से हमारे पाठक समझ गये होंगे कि रोग होने पर डा० की सहायता की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। हाँ, जो लोग डाक्टर एवं औषधियों का बहिष्कार नहीं कर सकते, हम यही कहेंगे कि यथासाध्य वे अपने ऊपर विश्वास रखें और डाक्टर को अधिक न सतावें और यदि उन्हें डाक्टर की सहायता अनिवार्य ही हो जाय, तो कम-से-कम किसी योग्य डा० को बुलावें और उसी के मतानुसार चलें। किसी दूसरे व्यक्ति तब तक न बुलावें, जब तक कि डाक्टर स्वयं न बुलाने को कहें। लेकिन यह याद रहे कि रोगों को जड़ से दूर करना डाक्टर के हाथ में नहीं है।

फिनिक्स-नैटाल

—मोहनदास कर्मचन्द गांधी।

आरोग्य-संदेश

पहला भाग

स्वास्थ्य

बहुधा लोग उस मनुष्य को नीरोग समझते हैं, जो चल फिर लेता है, खाता पीता है और जिसे वैद्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु विचार करने से ज्ञात हो जायगा कि यह उनकी भूल है। अधिकांश मनुष्य ऐसा करने पर भी रोग ग्रसित होते हैं। यह केवल उनका भ्रम है कि वे नीरोग हैं, क्योंकि वे इस पर पूरा विचार नहीं करते।

पूर्णतः स्वस्थ मनुष्य इस संसार में बहुत कम हैं। क्या ही सत्य कहा गया है कि केवल वही मनुष्य स्वस्थ है, जिस का स्वस्थ मस्तिष्क स्वस्थ शरीर में है। शरीर और मस्तिष्क में इतनी घनिष्टता है कि एक के अभाव में दूसरा कायम नहीं रह सकता। यह बात गुलाब के फूल से स्पष्ट हो जाती है; क्योंकि मनुष्य मात्र उसके रंग की अपेक्षा उसके सुगन्ध को अधिक पसन्द करते हैं। ठीक इसी प्रकार शारीरिक बल की अपेक्षा मानसिक तथा अध्यात्मिक बल कहीं अधिक श्रेयष्कर है। कोई भी मनुष्य कागज के बनावटी फूल के रंग को देख कर उसमें सुगन्ध की आशा नहीं करता। ठीक उसी तरह उस मनुष्य की अपेक्षा जो केवल शरीर से स्वस्थ है हम उसकी अधिक प्रतिष्ठा करते हैं, जो स्वच्छ विचारी और सुचरित्र है। शरीर और आत्मा दोनों ही आवश्यक हैं, यह बात सत्य है, फिर भी आत्मा

शरीर की अपेक्षा अधिक आवश्यक है। जो सुचरित्र नहीं है, वह स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। वह शरीर जिसमें दूषित विचार भरे पड़े हैं, रोग ग्रसित ही समझना चाहिए। इसलिए यह स्पष्ट होता है कि सच्चरित्रता ही स्वास्थ्य की नींव है। हम लोगों को मानना पड़ेगा कि कलुषित विचार हम लोगों के अन्दर भयानक रोग ही हैं।

विचार करने से हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि जिसके शरीर का गठन अच्छा है, वही पूर्ण स्वस्थ है। साथ ही जिसके दाँत, आँख अच्छी दशा में हैं, जिसके कान स्वच्छ हैं, जिसकी त्वचा से दुर्गन्ध रहित पसीना खूब निकलता है, जिसके मुँह से बदबू नहीं आती और जिसके हाथ-पांव अच्छी तरह अपना काम कर लेते हैं, जिसका शरीर औसत दर्जे का है और जिसको अपनी इंद्रियों पर पूर्ण अधिकार है।

जैसा कि कहा गया है, ऐसा स्वास्थ्य पाना कठिन है और पाकर उसे कायम रखना और भी कठिन है। हम पूर्णतया स्वस्थ नहीं हैं, इसके मुख्य कारण हमारे माता-पिता हैं। एक प्रसिद्ध लेखक का कहना है कि यदि माता-पिता स्वस्थ हों तो उनकी सन्तान भी उनसे अधिक स्वस्थ होगी। पूर्ण स्वस्थ मनुष्य मृत्यु से नहीं डरता है। मृत्यु से डरना अस्वस्थ होने का चिन्ह है। खैर, हमारा फर्ज है कि हम अपने को पूर्ण स्वस्थ बनावें। अब हमें यह देखना है कि हम पूर्ण स्वस्थ कैसे हो सकते हैं एवं प्राप्त किये हुवे स्वास्थ्य को कैसे स्थिर रख सकते हैं।

हमारा शरीर

यह संसार आकाश, जल, हवा, अग्नि और पृथ्वी इन पांच तत्त्वों से बना है। हमारा शरीर भी इन्हीं से बना है। शरीर में इनका उचित परिमाण अत्यन्त आवश्यक है। शरीर के लिए शुद्ध मिट्टी, स्वच्छ जल, शुद्ध अग्नि एवं स्वच्छ वायु की आवश्यकता है। अगर इन तत्त्वों में से एक भी उचित अंश में नहीं पहुँचा, तो मनुष्य रोग ग्रसित हो जाता है।

मनुष्य का शरीर, त्वचा, हड्डी, मांस और रक्त से बना है। शरीर का ढाँचा हड्डियों से बना है; लेकिन उनकी सहायता से न तो हम घूम सकते हैं और न खड़े ही रह सकते हैं। ये हड्डियाँ शरीर के कोमल भागों की रक्षा करती हैं। मस्तिष्क की रक्षा खोपड़ी की हड्डियों से होती है। दिल और फेफड़ों की रक्षा पसली की हड्डियाँ करती हैं। डाक्टरों की राय में मनुष्य के शरीर में २३८ हड्डियाँ हैं। हड्डियों का ऊपरी भाग सख्त होता है; लेकिन भीतरी भाग कोमल तथा खोखला होता है। दो हड्डियों का जोड़ मुलायम हड्डियों से ढका रहता है जो कोमल हड्डी कही जा सकती है।

दाँतों की गणना भी हड्डियों में की जाती है। ये दूध के दाँत बचपन में दीख पड़ते हैं तत्पश्चात् ये दाँत टूट जाते हैं और उनकी जगह स्थायी दाँत जम जाते हैं। जब स्थायी दाँत गिर जाते हैं तो उनकी जगह पुनः नये दाँत नहीं निकलते। दूध का दाँत छः सात माह से निकलना शुरू होता है और

दो ढाई साल तक निकलता है। स्थायी दाँत पाँच साल के बाद निकलना प्रारम्भ होता है। सत्रह और पचीस साल के अन्दर पूरा निकल आता है। दाढ़ों का नम्बर अन्त में आता है।

खाल के नीचे कहीं-कहीं पर लचकीलापन महसूस होता है। जिसे मछली कहते हैं। जबड़े की हरकत और आँखों का बन्द होना इन्हीं मछलियों पर निर्भर है। हमारे शरीर के भिन्न २ हिस्से भी इन्हीं मछलियों के द्वारा अपना काम करते हैं। इस पुस्तक में शरीर की हड्डियों का विस्तृत विवरण नहीं दिया जा सकता और लेखक को भी इस के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं है। अतः हम उतना ही विवरण दे रहे हैं जितना कि हमारे लिए आवश्यक है।

शरीर का सबसे मुख्य अंग पेट है। यदि पेट क्षण भर के लिए भी अपना काम बन्द कर दे तो सारे शरीर की क्रिया बन्द हो जायगी। जो भार उदर के ऊपर रहता है, वह जंगली जानवरों के सहन शक्ति से भी कहीं बढ़ कर होता है। पेट का काम भोजन पचाना और सारे शरीर को शक्तिशाली बनाना है। पेटका सम्बन्ध शरीर से वैसा ही है जैसा कि रेलवे ट्रेन का भाप के इन्जिन से। पाचक रस पेट से उत्पन्न होकर भोजन पचाता है और व्यर्थ वस्तु को मल-मूत्र के रूप में बाहर निकाल देता है। पेट की दाहिनी ओर जिगर और बाईं ओर तिल्ली है। जिगर का काम रक्त साफ़ करना तथा पित्त उत्पन्न करना है जिससे पाचन में बहुत सहायता मिलती है।

पसलियों से हृदय और फेफड़े दोनों ढके हैं। हृदय दोनों फेफड़ों

के मध्य में है, लेकिन इसका झुकाव बायीं ओर है। सीने में कुल चौबीस हड्डियां हैं। पांचवीं और छठी पसली के मध्य में दिल की धड़कन महसूस होती है। फेफड़े हवा की नाली से मिले हुए हैं जिससे हम लोग सांस लेते हैं। जो हवा फेफड़ों में आती है वह अशुद्ध रक्त को साफ बनाती है। मुँह की अपेक्षा नाक से सांस लेना लाभप्रद है।

शरीर की सब हरकतें रक्त-संचार के ऊपर निर्भर हैं। रक्त ही के द्वारा सारे शरीर का पालन होता है। यह भोजन से पुष्टिकारक पदार्थ को अपने में ले लेता है और व्यर्थ वस्तु को मलमूत्र के रूप में बाहर निकाल देता है; और इस तरह शरीर को गर्म रखता है। नसों और धमनियों द्वारा रक्त का संचार प्रतिक्षण होता रहता है। रक्त ही के संचार से नाड़ी में धड़कन पैदा होती है। स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी में एक मिनट में ७५ धड़कनें होती हैं। बच्चों की अपेक्षा बुढ़ों की नाड़ी सुस्त चलती है।

वायु द्वारा रक्त साफ होता है। जब रक्त एक बार शरीर का पूर्ण चक्कर लगाकर फेफड़ों में लौटता है तो वह दूषित तथा जहरीला हो जाता है। अकस्मिज्जन जो वायु में मिला रहता है, खून को साफ करता है। जब यह सांस द्वारा हमारे फेफड़ों में जाता है तो नाइट्रोजन विषैली वस्तु को लेकर सांस द्वारा बाहर निकल जाता है। यह क्रिया बराबर होती रहती है।

चूँकि शरीर के लिए वायु अत्यन्त आवश्यकीय वस्तु है अतः अगले पृष्ठों में हम इसकी विवेचना करेंगे।

वायु

जीवन के लिए सबसे आवश्यकीय वस्तु हवा, जल और भोजन है। लेकिन हवा सबसे अधिक आवश्यक है। इसी कारण ईश्वर की कृपा से यह हमें अधिक मात्रा में मिल जाती है, और इसके लिए हमें कुछ नहीं देना पड़ता। आधुनिक सभ्यता ने स्वच्छ हवा को कुछ अंशों में अप्राप्य कर दिया है जिसकी प्राप्ति के लिए हमें पैसा लगाकर बाहर जाना पड़ता है। बम्बई के रहने वाले आयेरन या उससे भी अच्छा मालावार की पहाड़ियों में जाकर स्वास्थ्य लाभ करते हैं, लेकिन सभी इन स्थानों पर बिना पैसा खर्च किए नहीं जा सकते। इसलिए आजकल यह कहना अनुचित ही होगा कि हम लोग स्वच्छ हवा प्राचीन समय जैसे मुफ्त पाते हैं।

हमें मानना पड़ेगा कि हवा के बिना जीवित रहना असम्भव है। हम जानते हैं कि रक्त का संचार सारे शरीर में होता है, फिर फेफड़ों में आता है और शुद्ध होने के बाद पुनः चक्कर लगाता है। साँस द्वारा हम अशुद्ध हवा बाहर निकालते हैं और बाहर से आक्सिजन भीतर लेते हैं जिससे रक्त शुद्ध होता है। यह क्रिया बराबर जारी रहती है। इसी के ऊपर मनुष्य का जीवन निर्भर है। पानी में डूबने से हम इसीलिए मर जाते हैं कि न तो हम दूषित हवा को बाहर निकाल सकते हैं और न ताजी हवा पास सकते हैं।

गोता लगाने वाले जब पानी में पैठते हैं तो उन्हें टियूब द्वारा बाहर से ताज़ी हवा मिलती है। इसी कारण वे पानी में देर तक ठहरते हैं। यह अनुभव हो चुका है कि हवा के बिना मनुष्य पांच मिनट से अधिक जिन्दा नहीं रह सकता है। बच्चों की मृत्यु हमें अधिक सुनाई पड़ती है। इसका मुख्य कारण उनकी अनभिज्ञ मातायें हैं जो उन्हें ताज़ी हवा में नहीं रखती हैं।

हम लोग अशुद्ध हवा के उसी प्रकार विरुद्ध हैं जिस प्रकार गन्दे पानी और भोजन के; लेकिन पानी और भोजन की अपेक्षा अशुद्ध हवा के अधिक विरुद्ध हैं। चाहे हम प्यास से मर ही क्यों न जायं लेकिन दूसरे की कुल्ली किये हुवे पानी को कभी भी काम में न लायेंगे। लेकिन दुख की बात यह है कि हम शुद्ध हवा की ओर ध्यान नहीं देते। हम प्रत्यक्ष वस्तु की पूजा करते हैं लेकिन अप्रत्यक्ष एवं लाभदायक वस्तुओं पर ध्यान ही नहीं देते। बहुत से आदमी एक साथ सोते हैं लेकिन जो विषैली हवा उस कमरे में गुंजी रहती है उसका हम तनिक भी ध्यान नहीं रखते। दूसरे आदमी का जूठा पानी और जूठा भोजन पीने खाने के पूर्व हमें अच्छी तरह सोचना चाहिए। यहाँ तक कि वे मनुष्य भी जो भूख और प्यास से मरते हों, ऐसा करने के लिए कभी भी तैयार नहीं होंगे। लेकिन खेद ! हम में से बहुत कम इसका ध्यान रखते हैं कि जो हवा हमारे अन्दर प्रवेश करती है, वह अशुद्ध तथा विषैली है। यह कैसी आश्चर्य की बात है कि कई मनुष्य घंटों एक साथ तंग कमरे में सोते हैं और एक दूसरे की दूषित हवा अपने अन्दर

लेते हैं ! सौभाग्य से हवा एक ऐसी पदार्थ है कि छोटे से छोटे रास्ते से भी उस तंग तथा बन्द कमरे में कुछ प्रवेश करती रहती है ।

अब हमें विदित हो गया कि क्यों हम लोग निर्बल और रोगग्रसित हैं । अशुद्ध हवा ही इसका मूल कारण है कि आज ६६ प्रतिशत लोग रोगी हैं । रोग से बचने का सबसे अच्छा उपाय खुली हवा है । इसकी तुलना में डाक्टर कुछ नहीं हैं । अशुद्ध वायु से फेफड़े खराब हो जाते हैं और इसी की खराबी से राजयक्ष्मा का रोग होता है, जैसे कि खराब कोयले से इंजिन खराब हो जाता है । अतः डा० की राय है कि राजयक्ष्मा के रोगी को २४ घंटा खुली और ताजी हवा में रखना चाहिए । यही सब से उत्तम औषधि है ।

फेफड़ों के अतिरिक्त हवा शरीर के छोटे २ छिद्रों द्वारा भी उसमें प्रवेश करती है । हमें यह जानना आवश्यक है कि हवा कैसे शुद्ध रह सकती है । इस बात को कम लोग महसूस करते हैं कि गन्दी टट्टियां बहुत हानिप्रद हैं । कुत्ते और बिल्ली तक भी ज़मीन खुरच कर टट्टी करते हैं और उसे मिट्टी से ढक देते हैं । जहां पर आधुनिक ढंग की टट्टियों का अभाव है वहाँ हमें भी ऐसा ही करना चाहिए । एक टीन में राख या मिट्टी भर कर मल मूत्र पर डालने के लिए रखनी चाहिए । इससे यह लाभ होगा कि मक्खियां उस पर न बैठ सकेंगी और न गन्दगी फैला सकेंगी ।

हमें टट्टी की सफाई पर स्वयं ध्यान रखना चाहिए और यदि

हो सके तो उसे स्वयं साफ़ करना चाहिए। जो मल हमारे शरीर से निकलता है उसे दूर फेंकते न हिचकना चाहिए। उसे गड्ढा खोदकर ढक देना चाहिए। खुले स्थान में तो स्वयं गड्ढा खोदकर उसे ढकना चाहिए।

हम बहुधा जहाँ-तहाँ पेशाब करके हवा को खराब कर देते हैं। इस बुरे ढेब का परित्याग कर देना चाहिए। यदि इसके लिए उचित प्रबन्ध न हो सके तो हमें घर से दूर सूखी मिट्टी पर पेशाब करना चाहिए और उस पर मिट्टी डाल देनी चाहिए।

मल को अधिक गहराई में नहीं गाड़ना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से उस पर सूर्य की किरणें नहीं पहुँच पायेंगी और इसके अलावा वह ज़मीन के नीचे बहने वाले पानी को भी गन्दा कर देगा।

निवास स्थान या उसके इर्द गिर्द थूकने की आदत भी बहुत खराब है। वे कीड़े जो राजद्वयमा रोगग्रसित मनुष्य के थूक से उत्पन्न होते हैं, बहुत ही भयानक होते हैं। विषैले कीड़े हवा में प्रवेश कर दूसरे मनुष्य के शरीर में चले जाते हैं और फलतः उसे भी रोगी बना देते हैं। थूकने के लिए घर में एक खास वर्तन रखना चाहिए। घर के बाहर सड़कों पर, सूखी ज़मीन पर थूकना चाहिए ताकि कोई हानि न हो। डा० की राय है कि राजद्वयमा के रोगी को पीकदान में ज़हर डाल कर थूकना चाहिए; क्योंकि यदि वह सूखी ज़मीन पर भी थूकता है तो

कीड़े धूल के सहारे हवा में मिल जायेंगे। सचमुच थूकने की आदत बहुत गन्दी और हानिकारक है।

बहुतेरे लोग पक्के खाद्य पदार्थ या ऐसेही अन्य सामग्री को जहाँ चाहते हैं फेंक देते हैं जो सड़कर हवा को दूषित कर देती है। यदि ऐसी चीज़ें ज़मीन में गाड़ दी जाँय तो हवा दूषित होने से बच जाय और साथ ही ज़मीन को कुछ खाद भी प्राप्त हो जाय। वास्तव में कोई भी सड़ी गली चीज़ खुली हवा में न छोड़नी चाहिए। ऐसा करने के लिए हमें अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं है। केवल थोड़ी सी सावधानी से यह काम हो सकता है।

अब इस बात को हम लोग समझ गये कि स्वयं हम लोगों की कुछ आदतें हवा को दूषित कर देती हैं तथा उसको स्वच्छ रखने के लिये हम क्या सावधानी कर सकते हैं। हम पीछे लिख चुके हैं कि सांस नाक द्वारा लेना चाहिए मुँह से नहीं। उचित रीति से सांस लेना बहुत कम लोग जानते हैं। बहुतेरे मुँह द्वारा सांस लेते हैं जो कि बहुत हानिकारक है। सांस लेने से यदि बहुत ठंडी हवा अन्दर प्रवेश करती है तो हमें ठंड लग जाती है और अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस के अतिरिक्त मुँह से सांस लेने से हवा में मिले मिट्टी के कण फेफड़ों में पहुँच कर बहुत हानि पहुँचाते हैं। जैसे कि नवम्बर के दिनों में लंडन में जो धुआँ बड़ी-बड़ी चिमनियों से निकलता है वह कुहरे में मिल कर एक पीला पदार्थ पैदा करता है। इस में कालिख मिला

14285

रहता है जो वहाँ के मुँह से सांस लेने वाले आदमियों के थूक में देखा जाता है। जो स्त्रियाँ नाक से सांस नहीं लेती इससे बचने के लिए मुँह पर नक्काव डाले रहती हैं जो उनकी उससे रक्षा करता है। यदि इन नक्काव को सावधानी से देखा जाय तो उन पर छोटे २ कोयले के कण लगे हुये मिलेंगे। हमारे नाक के अन्दर ऐसे ईश्वरीय पर्दे हैं जो उन्हें फेफड़ों तक जाने से रोक देते हैं। अतः हमें सर्वदा नाक ही से सांस लेना चाहिए। यह कोई कठिन कार्य नहीं है अगर हम लोग अपने मुँह को सिवाय बात चीत करते वक्त छोड़ सर्वदा बन्द रखें। जिनकी आदत मुँह खोल कर सोने की है उन्हें अपने मुँह पर पट्टी लगाकर सोना चाहिए ताकि उन्हें नाक से साँस लेना पड़े। उन्हें सुबह-शाम खुले हवा में बीस-बीस लम्बी साँस लेना चाहिए। सभी आदमी इस साधारण व्यायाम को कर सकते हैं और थोड़े ही दिन बाद यह देख सकते हैं कि उनका सीना कितना चौड़ा और मजबूत होता जाता है। दो ही महीने बाद इस बात का अनुभव होगा कि उनका सीना पहले की अपेक्षा कुछ अधिक चौड़ा हो गया है। सैंडो की कसरत का यही रहस्य है।

हमें सदा स्वच्छ हवा में स्वाँस लेने की आदत डालनी चाहिए। हम लोग बहुधा दिन-रात किसी बन्द कमरे में पड़े रहते हैं। हमारे अन्दर यह एक बुरी आदत है। जहाँ तक सम्भव हो हमें खुली हवा में रहना चाहिए, तथा बारंदा में सोना चाहिए। कमरे के दरवाजे और खिड़कियों को सर्वदा खोल कर सोना

चाहिए। हवा हमारी दिन भर की खुराक है; अतः हमें ठंड से नहीं डरना चाहिए। उन लोगों को ठंड लगने की सम्भावना है जिनकी आदत बन्द कमरे में सोने की है। लेकिन अभ्यस्त हो जाने पर उनकी यह बुरी आदत भी जाती रहेगी।

यूरप में आज-कल राजयक्ष्मा के रोगियों के लिये इस ढंग का कमरा बनाया गया है कि उसमें सदा स्वच्छ हवा प्रवेश करती रहे। हम लोग जानते हैं कि हिंदुस्तान में कभी-कभी भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसका मुख्य कारण दूषित हवा में स्वाँस लेना ही है। इस बात पर विश्वास रखना चाहिए कि कोमल-से-कोमल शरीर वाला मनुष्य भी ताज़ी और ठण्डी हवा में स्वाँस लेने का अभ्यस्त हो सकता है। यदि हम सदा स्वच्छ हवा में स्वाँस लेने की आदत डालें तो अपने को बहुतेरे भयंकर रोगों से बचा सकते हैं।

खुले मुँह सोना भी उतना ही आवश्यक है जितना खुली हवा में स्वाँस लेना। हम लोगों में से बहुतों की आदत मुँह ढक कर सोने की है। ऐसा करने से स्वयं उनके अन्दर की निकली हुई दूषित हवा पुनः उनके स्वाँस से अन्दर प्रवेश करती है। यह बुरी आदत है और स्वाँस के सिद्धान्त के विरुद्ध है।

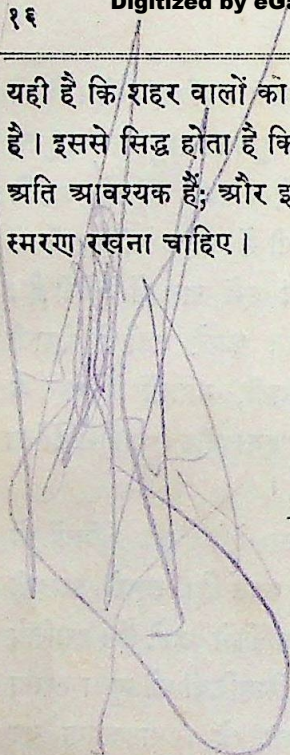
यदि हमें जुकाम हुआ हो तो हम सर को ढक सकते हैं लेकिन नाक को सदैव खुला ही रखना चाहिए। हवा और रोशनी में घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों की समान आवश्यकता है। इसी कारण अंधेरे स्थान को नरक कहते हैं। जहाँ रोशनी नहीं जाती

वहाँ की वायु कभी स्वच्छ नहीं रह सकती। यदि हम लोग किसी बन्द स्थान में प्रवेश करें तो शीघ्र ही दूषित वायु का अनुभव करने लगेंगे। हम लोग अंधेरे में नहीं देख सकते। इससे प्रकृति की यह इच्छा है कि हम लोग रोशनी में रहें। अधियारी की हमें जितनी आवश्यकता है प्रकृति स्वयं हमें रात में दे देती है। फिर भी बहुत लोग जमीन के नीचे बने कमरे जहाँ कि रोशनी और हवा उचित मात्रा में नहीं पहुँच पाती, गर्मियों में रहने के आदी हैं। ऐसे लोग जो स्वयं अपने को हवा और रोशनी से वंचित रखते हैं—सर्वदा कमजोर बने रहते हैं।

आज-कल यूरुप में बहुतेरे डाक्टर ऐसे हैं जो रोगियों को वायु और धूप के प्रयोग से चिकित्सा करते हैं। लाखों आदमी हवा और सूर्य की किरणों द्वारा आराम किये जाते हैं। इसलिये हमें अपने कमरे के दरवाजों को और खिड़कियों को खुला रखना चाहिए, ताकि स्वच्छ हवा प्रवेश करती रहे। पाठकगण यह प्रश्न कर सकते हैं कि जो लोग खान के अन्दर काम करते हैं, उनके ऊपर क्यों नहीं असर पड़ता।

लेकिन जो मनुष्य इस विषय को अच्छी तरह जान गया है वह ऐसा प्रश्न कदापि नहीं करेगा। हमें अच्छा से अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त करना चाहिए और जैसे-तैसे स्वास्थ्य पर संतोष नहीं करना चाहिए। यह मानी हुई बात है कि कम हवा और कम रोशनी रोगी बना देते हैं। शहर के रहने वाले देहात के रहने वालों की अपेक्षा अधिक कोमलांग होते हैं; इसका कारण

यही है कि शहर वालों को कम हवा और कम रोशनी मिलती है। इससे सिद्ध होता है कि हवा और रोशनी स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक हैं; और इनमें से प्रत्येक को उपरोक्त विषयों पर स्मरण रखना चाहिए।



जल

हवा के बाद जल का नम्बर आता है। जीवन के लिए हवा की भाँति पानी की भी अत्यन्त आवश्यकता है। हवा के बिना मनुष्य चन्द मिनटों से अधिक जिन्दा नहीं रह सकता लेकिन पानी के बिना कुछ दिनों तक जिन्दा रह सकता है। भोजन के बिना मनुष्य केवल पानी के सहारे बहुत दिनों तक रह सकता है। हमारे खाद्य-पदार्थों में सत्तर प्रतिशत पानी का अंश है और इसी अनुपात से हमारे शरीर में भी।

हमारे लिए पानी एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है, फिर भी उसकी रक्षा हम कम करते हैं। हवा और जल के सम्बन्ध में असावधानी रखने ही से हमें कितने भयंकर रोग आ घेरते हैं। गन्दला पानी पीने से बहुधा पथरी का रोग होता है।

पानी दो तरह से गन्दला हो सकता है। या तो उसके निकलने का स्थान गन्दा हो या हम लोग उसे गन्दा करें। यदि पानी गंदी जगह से निकलता हो तो हमें नहीं पीना चाहिए; प्रायः हम लोग ऐसा पानी पीते भी नहीं हैं। लेकिन जो पानी हम स्वयं गन्दा करते हैं उसे पीते हम ज़रा भी नहीं हिचकते। नदी का पानी सबसे निर्मल समझा जाता है, यद्यपि हम लोग उसमें कूड़ा-करकट फेंकते हैं और गन्दे कपड़े धोते हैं। हमें नियम बना लेना चाहिए कि हम उस पानी को कभी न पीयें जिसमें लोग स्नान करते हैं। नदी का

ऊपरी भाग का पानी पीने के लिए ही रख छोड़ना चाहिए; और नीचे का भाग कपड़ा धोने और स्नान करने के लिए। जहाँ ऐसा प्रबन्ध न हो वहाँ पीने का पानी हमें बालू खोद कर लेना चाहिए। यह पानी बहुत निर्मल होता है; क्योंकि बालू पानी को छानकर स्वच्छ कर देता है। कुवें का पानी पीना बहुधा हानिकारक होता है। कुआँ जब तक चारों तरफ से सुरक्षित न हो उसका पानी नहीं पीना चाहिए।

कभी-कभी चिड़ियाँ पानी में गिर कर मर जाती हैं। क्योंकि वे कुवें के भीतर अपना घोंसला बनाती हैं। पानी भरने वालों के पाँव का कीचड़ भी पानी में गिर कर उसे गन्दा करता है। इन्हीं सब कारणों से कुवें का पानी पीने में हमें सावधानी रखनी चाहिए। बहुधा टब का पानी भी गन्दा हो जाता है। उसे बराबर साफ करने और ढक कर रखने से पानी पीने योग्य हो सकता है। हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जिस तालाब या कुवें का पानी हम पीते हैं वह स्वच्छ हो। बहुत कम लोग पानी को स्वच्छ रखने का प्रयत्न करते हैं। पानी को स्वच्छ रखने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि उसे उबाल लिया जाय और ठण्डा होने पर फिर किसी साफ तथा मोटे कपड़े से किसी दूसरे बर्तन में छान कर रख लिया जाय। हमारा काम यहीं समाप्त नहीं हो जाता। हमें यह महसूस करना चाहिए कि इस विषय में हमारी जिम्मेदारी हमारे भाइयों के लिए और भी है। जनता के प्रयोग का जल हमें कभी गन्दा नहीं करना चाहिए। जो पानी पीने के

लिए है उसमें हमें कभी कपड़ा नहीं धोना चाहिए। नदी के किनारे हमें कभी शौच नहीं होना चाहिए। न तो हमें वहाँ मुर्दा ही जलाना चाहिए और न जली हुई राख पानी में बहाना चाहिए।

इतना प्रयत्न करने पर भी स्वच्छ पानी मिलना कुछ कठिन सा है, क्योंकि इसमें चार, घास के टुकड़े और अन्य सड़ी-गली चीजें मिली होती हैं। वर्षा का पानी सबसे स्वच्छ होता है, लेकिन हमारे पास पहुँचते-पहुँचते वह भी वायु मण्डल में उड़ते हुए गन्दे पदार्थों के मिल जाने से गन्दा हो जाता है।

अधिकांश मनुष्य इस बात को नहीं जानते हैं कि पानी दो प्रकार का होता है—हल्का और भारी। भारी पानी वह है जिसमें एक प्रकार का नमक मिला रहता है। इस कारण उस पानी से साबुन में फेन नहीं उठता और भोजन उसमें अच्छी तरह नहीं पकता। इसका स्वाद खारा होता है और हल्के पानी का मीठा या स्वाद-हीन होता है। कुछ लोगों की धारणा है कि हल्के पानी की अपेक्षा भारी पानी, नमक का मिश्रण होने के कारण, लाभदायक होता है। लेकिन अनुभव से यह पता लगा है कि भारी पानी पाचन-शक्ति को कम करता है। हल्का पानी पाचन शक्ति को बढ़ाता है। वर्षा का पानी हल्के पानी से भी अच्छा होता है। अतः पीने के लिए सर्वोत्तम है। भारी पानी यदि डेढ़ घण्टे तक उबाला जाय तो वह भी हल्का हो जाता है और तब इसे छानकर पी सकते हैं।

यह प्रश्न हमेशा पूछा जाता है कि मनुष्य को कब और कितना पानी पीना चाहिए? इसका उचित उत्तर यही है कि

जब प्यास लगे तब पानी पीना चाहिए। भोजन के मध्य में भी पानी पीया जा सकता है या भोजन के बाद शीघ्र ही पीना चाहिए। पानी के सहारे भोजन नहीं निगलना चाहिए। यदि भोजन स्वयं नीचे नहीं उतरता हो तो यह समझना चाहिए कि या तो वह अच्छी तरह मुंह से कुचला नहीं गया है या पेट इसे चाहता ही नहीं है।

साधारणतः पानी पीने की आवश्यकता नहीं है। जैसे कि पहले बतलाया जा चुका है कि हमारे भोजन में पानी का अंश अधिक है; और भोजन पकाते समय भी हम उसमें पानी मिलाते हैं। तब हमें प्यास क्यों लगती है? उन लोगों को पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती, जिनके भोजन में मसाला और प्याज न मिला हो। जिन्हें अधिक प्यास लगती है, वे अवश्य किसी-न-किसी रोग के शिकार हैं।

दूसरे को पानी पीते देख प्यास न होने पर भी हमारी इच्छा पानी पीने को होती है। इसी बुनियाद पर हम उस पानी को पीते भी हैं; क्योंकि दूसरों को पीते देखते हैं। इसके लिए वायु के परिच्छेद में, पहले ही कहा जा चुका है। हमारे खून में स्वयं इतनी शक्ति है, जो बहुतेरे विषों को नाश कर देती है। लेकिन उस खून की शुद्धि की उसी प्रकार आवश्यकता पड़ती है, जिस प्रकार एक बार प्रयोग करने के बाद तलवार को साफ़ करने की आवश्यकता होती है। यदि हम लोग गन्दले पानी को बराबर पीते रहें तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, कि हम लोगों का खून अन्त में विषैला हो जाय।

भोजन

भोजन के विषय में नियम निर्धारित करना कठिन ही नहीं, बरन् एक जटिल समस्या है। उसमें मत भेद है कि कब, कितना और किस प्रकार का भोजन खाना चाहिए। मानव-प्रकृति इस सम्बन्ध में इतनी भिन्नता रखती है कि एक ही पदार्थ एक के लिए गुणकारी और दूसरे के लिए हानिकारक सिद्ध होता है।

यद्यपि यह कहना कठिन है कि किस प्रकार का भोजन ग्राह्य है। फिर भी इस सम्बन्ध में कुछ विचार करना अति आवश्यक है; क्योंकि बिना भोजन किए मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। भोजन प्राप्ति के लिए हमें तरह-२ की कठिनाइयाँ, एवं दुःखों का सामना करना पड़ता है; लेकिन यह मानी हुई बात है कि ६६ प्रतिशत मनुष्य केवल स्वाद के लिए खाते हैं और वे वैसे स्वाद्युक्त भोजन के अन्तिम परिणाम को नहीं सोचते। कुछ लोग पाचन-शक्ति को बढ़ाने के लिए औषधियों का भी सेवन करते हैं; ताकि वे अधिक मात्रा में खा सकें। कुछ लोग तो इतना अधिक भोजन कर लेते हैं कि उल्टी तक करने लग जाते हैं और फिर भी उसी प्रकार का भोजन करते हैं। कुछ इतना अधिक खा लेते हैं कि दो-तीन दिन तक फिर भोजन नहीं करते। कभी-कभी यह भी सुनने में आता है कि कितनों की मृत्यु अधिक भोजन कर लेने से हुई है। मैं अपने निजी अनुभव की बात कहता हूँ कि जब कभी मुझे अपने पिछले दिनों की बात याद आती है

तो मैं हँस पड़ता हूँ और लज्जित हो जाता हूँ। उन दिनों मैं सुबह चाय पीता था, दो-तीन घण्टे बाद जलपान और एक बजे दिन को भोजन करता था। फिर तीन बजे चाय पीता था और ७-८ बजे के बीच रात को भोजन करता था। उन दिनों मेरी अवस्था दयनीय थी। मैं काफी मोटा था, फिर भी औषधियों की बोतलें पास ही रहती थीं। अधिक खाने के लिए मैं सदा पचानेवाली औषधि का सेवन करता था और पुष्टकारक औषधि भी खाता था। लेकिन उन दिनों आज के तिहाई भी काम करने की शक्ति और साहस नहीं था। यद्यपि वे मेरे युवाकाल के दिन थे। ऐसा जीवन, सचमुच दयनीय ही नहीं बल्कि विचार किया जाय तो पापमय तथा घृणित है।

मनुष्य केवल भोजन करने ही के लिए नहीं पैदा किया जाता और न उसे केवल भोजन ही के लिए जीवित रहना चाहिए। उसका प्रधान कर्तव्य अपने बनाने वाले (ईश्वर) को पहचानना तथा उसकी सेवा करना है। लेकिन चूँकि ये काम इस शरीर ही से किये जा सकते हैं, तथा करने आवश्यक हैं, अतः उसे कायम रखने के लिए भोजन करना आवश्यक है। पहलवान लोग भी इसे स्वीकार करते हैं कि हमें उतना ही भोजन करना चाहिए जितना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद हो।

अब पशु और पक्षियों का जीवन देखिये। वे कभी स्वाद के लिए नहीं खाते और न इतना अधिक ही भोजन करते हैं कि उन का पेट फटने लगे। वे केवल अपनी भूख मिटाने ही भर खाते

हैं। जो कुछ प्रकृति देवी उन्हें देती है वे वही खाते हैं। वे अपना भोजन पकाते नहीं हैं। क्या यह सच हो सकता है कि केवल मनुष्य ही पेट की उपासना करे ? क्या यह सच है कि ऐसा कर केवल मनुष्य ही सदा रोगों का शिकार बने ? वे पशु-पक्षी जो स्वतंत्रता-पूर्वक विचरते हैं, कभी भूख से नहीं मरते। उनके लिए स्वादिष्ट तथा रुखा-सूखा भोजन में कोई अन्तर नहीं है। वे जीव जो दिन में कई बार भोजन करते हैं और वे जीव जिन्हें एक बार भी कठिनता से भोजन मिलता है—केवल मानव-समाज ही में मिलते हैं। फिर भी हम मनुष्य अपने जीवन को उत्तम समझते हैं। वास्तव में वे मनुष्य जो अपना समय केवल पेट-पूजा ही में गवाँते हैं, उन पशु-पक्षियों से कहीं बदतर हैं।

ध्यानपूर्वक विचार करने से हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि सभी तरह के पाप, भ्रूठ बोलना, ठगना, चोरी करना इत्यादि सब पेट-देव की भेंट ही के लिए किये जाते हैं। केवल वे ही मनुष्य अपने इन्द्रियों को वश में कर सकते हैं, जो अपनी जिह्वा को स्वादिष्ट भोजन से वंचित रखते हैं। यदि हम लोग भ्रूठ बोलें, चोरी करें, ठगपन करें, तो समाज की दृष्टि में घृणित समझे जाते हैं, लेकिन जो सर्वदा स्वादिष्ट भोजन के पीछे पड़े रहते हैं, उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। पेट-देव के लिए आज तक जो भी घृणित कार्य किये जा रहे हैं, उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। सभी सभ्य समाज एक भ्रूठ चोर का बहिष्कार कर देगा; लेकिन उसका नहीं जो अपना जीवन

भोजन करने ही के लिए मान बैठा है तथा जो हृद से ज्यादा भोजन करता है। चूँकि हम सभी पेट-देव के ऐसे ही उपासक हैं; अतः इसे कोई पाप नहीं समझते। जैसे कि एक डकैत जो डकैतों के गांव में बसा है कभी डकैत नहीं समझा जाता। व्याह या दूसरे किसी त्यौहार के अवसर पर अच्छा और स्वादिष्ट भोजन तैयार करना हम अपना मुख्य धर्म समझते हैं, यहां तक कि श्राद्ध कर्मों में भी ऐसा करते नहीं संकोच करते। ऐसे मौके पर यदि कोई मेहमान आ जाता है, तो उसको मिठाइयों की भेंट करते हैं। यदि समय-समय पर हम अपने सम्बन्धियों को निमंत्रित नहीं करते हैं, या उनके यहां दिये गये भोज में सम्मिलित नहीं होते हैं, तो हम उनकी नज़रों में गिर जाते हैं। और यदि निमंत्रित कर हम उनके आगे स्वादयुक्त भोजन नहीं रखते तो कंजूस समझे जाते हैं। हम प्रायः ऐसी धारणा करते हैं कि छुट्टी के दिन अवश्य स्वादिष्ट भोजन बनना चाहिए। वास्तव में जो एक बड़ा पाप है उसे करने में हम अपनी बुद्धिमत्ता समझे हुए हैं। हम अपने को ऐसी भीषण परिस्थिति से कैसे बचा सकते हैं। कम-से-कम प्रत्येक मनुष्य को स्वास्थ्य-सुधार की दृष्टि से इसके ऊपर विचार करना आवश्यक है।

इस विषय पर अब हम लोग दूसरे ढंग से विचार करें। संसार में हम देखते हैं कि प्रकृति देवी ने मनुष्य, पशु, पक्षी और कीड़े-मकोड़े सभी जीवों के लिए बहुतायत से खाद्य पदार्थ पैदा किया है। यह प्रकृति का अनादि नियम है कि उसके

राज्य में सब काम नियम बद्ध होते हैं। न तो वह कभी सोती है न अपने नियम से विचलित होती है और न उसमें आलस्य है। उसके सभी काम छोटे या बड़े नियमानुसार होते रहते हैं। यदि हम लोग अपने जीवन को प्रकृति के नियमानुसार बनावें तो हमें अनुभव होगा कि इस संसार में भूख से पीड़ित होकर अधिक लोग नहीं मरते। चूँकि प्रकृति सभी जीवों के लिए काफ़ी भोजन उत्पन्न करती है इसलिए यदि हम अपने हिस्से से अधिक भोजन करते हैं तो ऐसा कर दूसरों को भोजन से वञ्चित करते हैं। क्या यह सच नहीं कि बादशाह एवं धनियों के भोजनालय में उन आवश्यकता से कहीं अधिक भोजन तैयार किया जाता है; और ऐसा कर बहुतेरे गरीबों का भोजन छीन लिया जाता है। अब यदि गरीब भूखों मरते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। ऐसे ही हम लोग अधिक भोजन कर दूसरों का भाग छीनते हैं एवं भोजन भी स्वादिष्ट ही करते हैं। ऐसी अवस्था में कोई कारण नहीं कि हमारा स्वास्थ्य खराब न हो।

इसके पहले कि हम लोग इस बात का निर्णय करें कि किस किस का भोजन हमारा आदर्श भोजन हो सकता है। हमें यह विचार कर लेना चाहिए कि किस प्रकार का भोजन हमारे स्वास्थ्य के अनुकूल है और किस प्रकार का प्रतिकूल। “भोजन” शब्द के अन्तर्गत वे सभी चीजें हैं जो मुंह में खाये जाते हैं जैसे कि शराब, भंग, अफीम, तम्बाकू, चाय, कहवा,

कोकीन, मसाले, चटनी इत्यादि। कुछ निजी एवं कुछ दूसरों के अनुभव से मेरा विश्वास है कि ये सभी वस्तुयें हानिकारक हैं।

शराब, भंग, अफीम दुनिया के हर एक धर्म से बहिष्कृत हो गये हैं। यद्यपि उससे परहेज करने वालों की संख्या अभी कम है। शराब ने तो कितने घरों का नाश कर दिया है। शराबी की अकल मारी जाती है, यहाँ तक कि वह स्त्री और कन्या में भी भेद नहीं कर पाता। उसका जीवन भार स्वरूप हो जाता है। शराबी बहुधा कीचड़ों की मोरियों में पड़े पाये जाते हैं। बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी भी शराब के नशे में बेहोश हो जाता है। उसका दिमाग कमजोर हो जाता है और वह कोई काम नहीं कर सकता। कुछ लोगों का कहना है कि दवा के तौर पर शराब पीना हानिकारक नहीं है, लेकिन यूरोप के डा० लोग भी अब अपने इस ख्याल को छोड़ने लगे हैं। बहुतों का कहना है कि जब शराब दवा के रूप में इस्तेमाल की जाती है तो उसको ऐसे भी इस्तेमाल कर सकते हैं। लेकिन मैं कहता हूँ कि बहुतेरे विषों का प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता है तो क्या हम उस विष को अपना भोजन समझ सकते हैं? शराब कुछ रोगों की औषधि हो सकती है फिर भी कोई बुद्धिमान मनुष्य किसी भी हालत में इसे ग्रहण करने को तैयार नहीं होगा। इससे संसार के लाखों और करोड़ों व्यक्तियों का नाश हुआ है। ऐसे पदार्थ को एक दम त्याग देना अच्छा है। भले ही हम लोगों का यह नश्वर शरीर शराब की औषधि के बिना नष्ट हो जाय। सौभाग्य-

वश हिन्दुस्तान में अब भी ऐसे स्त्री-पुरुष बहुत हैं जो डाक्टर की सम्मति के विरुद्ध इसे छू भी नहीं सकते। चाहे उनके जीवन का अन्त ही क्यों न हो जाय।

अफीम भी शराब से कम हानिकारक नहीं है। यह सर्वथा त्याज्य है। कौन नहीं जानता कि चीन ऐसे शक्तिशाली देश ने अफीम के प्रभाव से अपना सर्वस्व नष्ट कर दिया है और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं कर सकता है। भारत के बहुतेरे बड़े-बड़े जागीरदारों ने भी इसके लत में पड़कर अपना सर्वनाश कर दिया है।

तम्बाकू ने भी लोगों के ऊपर इस कदर अपना जादू फैला रक्खा है कि उसके त्याग करने में युग लग जायेंगे। क्या युवा, क्या बुढ़ा, क्या बालक सभी इसके शिकार बन गये हैं। भले-से-भले आदमी इससे परहेज नहीं करते। इसका प्रयोग सार्वजनिक हो गया है और प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। हम लोगों में से बहुत कम सिगरेट कम्पनियों की चालों को जानते हैं। वे ऐसे ही अफीम या कुछ गन्धयुक्त नशीली वस्तु उसमें मिलाते हैं, जिसकी वजह से उन्हें पीने का चस्का बढ़ता जाता है और उसके चंगुल से छुटकारा पाना मुश्किल हो जाता है। वे लाखों पौण्ड उसके विज्ञापन में खर्च कर देते हैं। वे अपनी इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए अपना निजी प्रेस, सिनेमा और लाट्रीज का प्रबन्ध किये हुए हैं। यहाँ तक कि अपना उल्लू सीधा करने के लिए रुपये को पानी की तरह बहा देते हैं।

स्त्रियाँ भी अब तम्बाकू पीने लग गई हैं। आदमी का यह एक बड़ा सहायक है, इसे सिद्ध करने के लिए अनेक काव्य भी बन गये हैं। तम्बाकू की लत की अनेक बुराइयाँ हैं। पीने वाले उसके ऐसे गुलाम हो गये हैं कि वे उससे मुक्त होने की चेष्टा तक नहीं करते; यहाँ तक कि वे अपरचितों के घर में भी आग माँगते ज़रा नहीं हिचकते। यह साधारण अनुभव की बात है कि इसके पीने वाले कितने ही दुष्कर्मों में पड़ जाते हैं। छोटे-छोटे बच्चे अपने माँ-बाप के पैसे चुराने लगते हैं, यहाँ तक कि कितने कैदी सिगरेट चुरा लेते हैं और उसे सावधानी से छिपा कर रखते हैं। इसके पीने वाले बिना भोजन रह जायेंगे, लेकिन इसे पीये बिना नहीं रह सकते। सुना गया है कि कितनी बार अनेक सिपाही युद्ध-क्षेत्र में सिगरेट के बिना अपनी युद्ध-शक्ति तक खो बैठे हैं।

रूस देश के काउन्ट टॉलस्टॉय की कही हुई एक कथा है कि किसी कारणवश एक मनुष्य ने अपनी स्त्री का वध करना चाहा। वह कटार खींचकर मारने को तैयार ही था कि उसका विचार बदल गया और उसने कटार रख दी। तब वह सिगरेट पीने लगा। सिगरेट पीने के कारण उसकी अकल मन्द पड़ गई और वह फिर अपनी स्त्री को मारने के लिए तैयार हो गया और उसे मार ही डाला। टॉलस्टॉय की धारणा है कि सिगरेट के विष ने ही उसके विचार को फिर से विपैला बना दिया जिससे उसने स्त्री का वध कर दिया अतः तम्बाकू कहीं शराब से भी बढ़ कर

विषैला होता है। इसके अतिरिक्त इसे पीने में खर्च भी बहुत पड़ता है। मुझे स्वयं एक ऐसे व्यक्तिविशेष से भेंट हुई है, जिनको ७५ रु० माहवार से भी अधिक सिगरेट में खर्च करना पड़ता है।

तम्बाकू पीने से पाचन-शक्ति कम हो जाती है। इसके पीने वालों को भूख नहीं लगती बल्कि भूख बढ़ाने के लिए उन्हें मसाला और बघार का प्रयोग करना पड़ता है। उनका दम फूलने लगता है और कभी-कभी उसके चेहरे पर भूर्रियाँ पड़ जाती हैं। दाँत और मसूड़ों का रंग काला पड़ जाता है, इसके कारण कितने ही तो बीमार पड़ जाते हैं। तम्बाकू का धुँआ हवा में सम्मिलित होकर जन-साधारण का भी स्वास्थ्य खराब कर देता है।

मेरी समझ में नहीं आता कि जो शराब पीना घृणित समझते हैं वे तम्बाकू क्यों पीते हैं, शायद तम्बाकू का जहर सूक्ष्म है। इसीसे इसका प्रयोग करते हैं। अस्तु जो हो मुझे यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं कि जो तम्बाकू का बिलकुल परित्याग नहीं करेगा वह कभी भी स्वस्थ नहीं हो सकता।

शराब जैसी मादक वस्तुओं का सेवन केवल शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का ही नाश नहीं करता, बल्कि चरित्र पर भी धब्बा लगाता है। उसे अपने को सँभालने की शक्ति नहीं रह जाती। हमारे यहाँ जब कोई मेहमान चला आता है, उसके सत्कार में भी हम चाय और कहवा भेंट करते हैं। चाय-भोजन एक साधारण और प्रचलित भोजन हो गया है। लार्ड कर्जन के

राजत्वकाल से भारत में चाय की आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। अब तो करीब-करीब प्रत्येक घर में इसका प्रयोग रोजाना दोनों समय होने लगा है। समय ने इस तरह पलटा खाया है कि रोग-ग्रसित मनुष्य भी चाय और कहवे का प्रयोग पोषक समझ कर करने लगे हैं।

यह बतला देना उचित है कि चाय, काफी, कोकीन ये सभी वस्तुएँ हानिप्रद हैं; यद्यपि मुझे मालूम है कि मेरी इस बात का समर्थन बहुत कम लोग करेंगे। इन चीजों में एक प्रकार का विष होता है। चाय और कहवे में यदि दूध और ख़ाँड न मिलाई जाय तो इसमें कोई भी पोषक पदार्थ नहीं रह जायगा। बार-बार के अनुभव से यह मान लिया गया है कि इन वस्तुओं में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जो खून को बढ़ा सके। कुछ दिनों पहले इसका प्रयोग हम लोग किसी विशेष अवसर पर किया करते थे, परन्तु आज यह एक सामान्य प्रयोग हो गया है।

सौभाग्यवश कोकीन की अधिक क्रीमत होने से साधारण व्यक्ति उसका इस्तेमाल नहीं कर सकते। फिर भी धनिकों के घर में इसका प्रयोग होता रहता है। चाय, काफी एवं कोकीन ये सभी पाचन-शक्ति को मन्द करते हैं। ये कितने हानिकारक होते हैं, इस बात से सिद्ध हो जाता है कि जो इसे एक बार भी प्रयोग करता है, उसे इसके बिना नहीं रहा जाता। पहले मुझे स्वयं सुस्ती मालूम होती थी यदि मैं नियमित समय पर चाय नहीं पीता था। एक बार किसी विशेष अवसर पर करीब चार सौ

स्त्रियाँ और बच्चे इकट्ठे थे। प्रबन्धकर्ता उन्हें चाय नहीं देना चाहते थे। जो स्त्रियाँ वहाँ एकत्रित थीं उन्हें चार बजे चाय पीने की आदत थी। अधिकारियों को इस बात की सूचना दी गई कि यदि उन्हें नियमित समय पर चाय नहीं दी गई तो वे चलने-फिरने तक से लाचार हो जावेंगी। अतः अधिकारियों को अपनी प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ी। चाय बनने में कुछ देर हो गई जिस वजह से वहाँ बड़ा ही हल्ला हुआ जो स्त्रियों के हाथ में चाय का प्याला देने ही पर शान्त हुआ। मैं इस घटना के कारण को अच्छी तरह से जानता हूँ।

दूसरा एक उदाहरण यह है कि एक स्त्री चाय पीने की बुरी लत में पड़कर अपनी पाचन शक्ति खो बैठी थी; लेकिन चाय को छोड़ते ही उसका स्वास्थ्य सुधरने लगा। इंगलैंड में पैटर-सी म्यूनिसिपैल्टी का रहने वाला एक डाक्टर यह कहा करता था कि वहाँ पर हजारों स्त्रियों का सिर चकराता है जिसका कारण चाय पीने की अधिकता है। मेरा स्वयं ऐसे कई आदमियों से परिचय है जो चाय पीने के कारण अपना स्वास्थ्य खो बैठे हैं।

यह ठीक है कि कहवा कफ को कम करता है, लेकिन खून को उत्तेजित और पतला कर देता है। जो व्यक्ति कहवे को इस आधार पर पीते हैं कि उनका कफ इससे दबता है उन्हें मेरी राय में अदरक के रस का प्रयोग करना ठीक है। लाभदायक होने की अपेक्षा कहवा अधिक हानि प्रद होता है। जब खून

इससे अधिक उत्तेजित होकर विषैला हो जाता है तो प्राण निकलने में कोई आश्चर्य नहीं ।

कोकीन भी उतना ही हानिप्रद है जितना कि कहवा और चाय । इसमें एक प्रकार का विष होता है जो चमड़े के सुराखों को बन्द कर देता है । जो लोग सदाचार के पक्ष में हैं उन्हें यह बात अवश्य याद रखनी चाहिए कि चाय, कहवा एवं कोकिन उन मजदूरों द्वारा तैयार किये जाते हैं जो एक प्रकार के गुलाम ही हैं । अगर हम लोग स्वयं अपनी आँखों उनके साथ किये जाने वाले बर्तावों को देखें तो शायद हम कभी फिर उनका उपभोग करने को नहीं तैयार होंगे । सचमुच यदि हम जांच करें तो पता चलेगा कि हम लोगों के ६० प्रतिशत खाद्य-पदार्थ इसी तरीके से तैयार किए जाते हैं । कहवा, चाय और कोकीन के बदले पीने के लिए एक दूसरी वस्तु इस तरीके से तैयार कर सकते हैं जिसे अच्छे-से-अच्छे पीने वाले चाय, कहवा और उसमें कुछ अन्तर नहीं पायेंगे । एक सेर अच्छा गोहूँ एक कड़ाही में रख कर आग पर भूना जाय जब तक कि वह लाल न हो जाय । उसके बाद उसे खूब महीन पीस लिया जाय । एक चमच मैदे को प्याले में रखकर खोलता हुआ पानी उसमें छोड़कर चन्द मिनट तक उसको आग पर रखा जाय । उसके बाद उसमें दूध और शक्कर मिलाकर उसका प्रयोग किया जाय । यह कहवे से कहीं सस्ता, स्वादिष्ट तथा लाभप्रद होता है । जो ऐसा चूर्ण बनाने के परिश्रम से बचना चाहते हों उन्हें अहमदा-

बाद के सत्याग्रह आश्रम से इसे लेना चाहिए ।

भोजन के ख्याल से मानव-समाज तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है । सबसे बड़ा भाग वैष्णव (जो मांस नहीं खाता) । इस भाग में भारत के अलावा यूरोप, जापान और चीन के भी कुछ मनुष्य हैं । इनमें कुछ धर्म के भाव से मांस खाते हैं और कुछ यदि मिल जाय तो खुशी से खाते हैं । इनमें इटालियन, आयरिस, रूस के गरीब किसान और चीन के सब मनुष्य शामिल हैं । दूसरे भाग में वे लोग हैं जो मिश्रित भोजन खाते हैं । इनमें इंगलिस्तान के पुरुष, चीन, जापान के धनी पुरुष, भारत के धनी मुसलमान और धनी हिन्दू जिन्हें मांस खाने में कोई धार्मिक अड़चन नहीं है । परन्तु इस भाग में पहले भाग के बराबर मनुष्य नहीं हैं । तीसरे भाग में वे मनुष्य हैं जो केवल माँसाहारी हैं । वे ठंडे देश की असभ्य जातियाँ हैं । इनकी संख्या अधिक नहीं है । अब ये यूरोप की सभ्य जातियों के संसर्ग में आने से अपने भोजन के साथ शाक भी खाने लगे हैं । इस तरह मनुष्य तीन प्रकार का भोजन करता है । लेकिन हम लोगों का कर्त्तव्य है कि इसका विचार करें कि इन तीनों में सबसे अधिक स्वास्थ्यप्रद किस भाग का भोजन है ।

मनुष्य की शारीरिक बनावट को देखकर यही प्रतीत होता है कि प्रकृति ने मनुष्य को शाकाहारी बनाया है । मनुष्य और फल-भक्षी जीवों के शारीरिक अवयवों में बहुत कम अन्तर है ।

उदाहरण के लिए बन्दर को लीजिये। वह मनुष्य के अंग से बहुत मिलता-जुलता है और एक फलाहारी जीव है। उसके दांत और पेट मनुष्य के दाँत और पेट जैसे होते हैं। मांसाहारी जीव जैसे शेर, चीते वगैरह, सर्वथा उससे भिन्न होते हैं। मनुष्य और वृणभक्षी जीव, जैसे गाय वगैरह के भी कुछ अंग मिलते-जुलते हैं, लेकिन उनके जवड़े बहुत बड़े होते हैं तथा रंग-रूप में भी कुछ भिन्नता होती है। इन सब बातों के आधार पर वैज्ञानिकों का मत है कि मनुष्य का भोजन माँस नहीं और न केवल शाक ही है, बल्कि मूल-फल है।

वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि फलों के अन्दर वह सब तत्त्व पाये जाते हैं जो मनुष्य के लिए आवश्यक हैं। केले, संतरे, खजूर, अंगूर, सेब, बादाम, मूँगफली इत्यादि में अधिक मात्रा में पुष्टिकारक तत्त्व मौजूद हैं। उनकी यह भी राय है कि भोजन को पकाना नहीं चाहिए धूप से पके हुए फल अत्यन्त लाभदायक होते हैं। पकाये हुए भोजन का पुष्टिकारक तत्त्व नष्ट हो जाता है। जो वस्तु बिना आग पर पकाये हम नहीं खा सकते, वह प्रकृति ने हमारे लिए नहीं बनाई है।

यदि यह बात सत्य है तो हमें समझना चाहिए कि हम अपना बहुमूल्य समय भोजन पकाने में व्यर्थ नष्ट करते हैं। यदि हम लोग बिना पकाये हुए भोजन पर रह सकते हैं तो हमारा समय, स्फूर्ति और पैसे की बचत हो सकती है और ये साधन सुधार के कार्यों में लगाये जा सकते हैं।

कुछ लोग ऐसा कहेंगे कि बिना पकाये हुए भोजन पर जीवन निर्वाह करने की आशा केवल मूर्खता है; क्योंकि ऐसा आजन्म नहीं किया जा सकता। लेकिन इस समय हम इस विषय पर नहीं विचार कर रहे हैं कि सब लोग इस नियम के अनुसार चल सकते हैं या नहीं। हम केवल यह विचार कर रहे हैं कि हमें क्या करना चाहिए।

हम लोग केवल इस बात का तर्क कर रहे हैं कि कौनसा पदार्थ हमारा आदर्श भोजन हो सकता है। ऐसा कर जब हम यह कहते हैं कि फल आदर्श भोजन है, तो हम लोग सर्व-साधारण से यह आशा नहीं करते कि वे केवल फल ही खाने लगेंगे। कहने का केवल यही अभिप्राय है कि यदि वे फल खायें तो यह उनका सबसे पुष्टिकारक एवं आदर्श भोजन होगा। इंग्लैण्ड में बहुत से ऐसे आदमी मौजूद हैं जो केवल फलाहार करते हैं और अपने अनुभव को अंकित किये हुये हैं। वे ऐसे मनुष्य हैं जो धर्म के नाम पर नहीं, बल्कि स्वास्थ्य के लिए ऐसा करते हैं। जर्मनी के एक जुस्ट नामक डाक्टर ने इस विषय पर एक बहुत बड़ी पुस्तक लिखी है और उसमें अनेक दलीलों को पेश करते हुए फलाहार के महत्व को दर्शाया है। उसने बहुत से रोगियों को फल तथा स्वच्छ वायु का सेवन करा कर आराम किया है। वह यहाँ तक कहता है कि प्रत्येक देश के मनुष्य अपने देश के फलों में अपने लिए पोषक पदार्थ पा सकते हैं। इस विषय में यदि मैं स्वयं अपना निजी अनुभव लिखूँ तो कोई

अत्युक्ति न होगी। गत छः मास से मैं फल खा कर रहता आ रहा हूँ। यहाँ तक कि दूध और मक्खन का भी परित्याग कर दिया है। मेरा मुख्य भोजन केला, चीना बादाम, खजूर, जैतून का तेल और कुछ खट्टे फल जैसे नींबू वगैरह हैं। मैं नहीं कह सकता कि मेरा यह प्रयोग कहाँ तक सफल हुआ है; लेकिन केवल छः महीने का समय किसी मुख्य उद्देश पर पहुँचने के लिए बहुत कम है। इतना अवश्य है कि मैं इन छः महीनों के बीच बिल्कुल नीरोग रहा हूँ जब कि दूसरे रोग ग्रसित थे। इस समय मेरी शारीरिक और मानसिक शक्ति पहले की अपेक्षा बढ़ी हुई है। मैं बड़े-बड़े बोझों का भार नहीं ले सकता; लेकिन मैं कड़े परिश्रम को देर तक बिना थकावट के कर सकता हूँ। मैं मानसिक काम भी अधिक उत्साह और तत्परता से कर सकता हूँ। मैं बहुत से रोगियों को अच्छे परिणाम के साथ फलाहार कराता हूँ। मैं उन अनुभवों को अगले पृष्ठों में विस्तृत रूप से बतलाऊंगा। यहाँ इतना ही कह देना आवश्यक समझता हूँ कि यह मेरा निजी अनुभव है कि फल सब भोजनों में पुष्टिकारक एवं स्वास्थ्यकारक है। मैं इस बात को पहले ही कह चुका हूँ कि मेरे कहने से सभी लोग फलाहार नहीं करने लगेंगे, हो सकता है कि पाठकों में से एक भी न करें, लेकिन मैं अपना कर्तव्य और धर्म समझकर इस विषय पर जो कुछ अनुभव मुझे प्राप्त हुआ है उसे लिख देना उचित समझता हूँ।

यदि कोई मनुष्य फलाहार करना चाहे तो उसे बहुत

सावधानी से इसे आरम्भ करना चाहिए। पहले उसे इस किताब के सभी प्रकरणों को पढ़कर उसके मुख्य-मुख्य बातों को समझ लेना चाहिए। पाठकों से मेरी यही प्रार्थना है कि वे अपना अन्तिम निर्णय शीघ्रता से न करें। जबतक कि मेरी सब बातों को न पढ़ लें। फलाहार के बाद शाकाहार और इसी में दूध भी शामिल है। शाक उतना पोषक नहीं है, जितना कि फल, क्योंकि शाक को आग पर पकाने से उसका कुछ पोषक अंश नष्ट हो जाता है। लेकिन बिना आग पर पकाये हम उसे खा नहीं सकते। आगे चलकर हम यह विचार करेंगे कि कौनसा शाक अधिक पोषक है।

गेहूँ सब अन्नो में प्रधान है। केवल गेहूँ पर मनुष्य अपना जीवन व्यतीत कर सकता है; क्योंकि इसमें पोषक तत्व समान अंश में है। इससे कई प्रकार के भोजन बन सकते हैं जो सहज ही में पच जाते हैं। मक्का और बाजरा भी उसी श्रेणी के हैं और इनकी भी रोटियाँ बनती हैं; किन्तु ये गेहूँ से कुछ नीचे दर्जे के हैं। अब हम यह विचार करेंगे कि गेहूँ के बनाने का सबसे अच्छा तरीका कौनसा है। कल का आटा जो बाजारों में बिकता है, बिल्कुल खराब होता है और उसमें पोषक पदार्थ बिल्कुल नहीं रहता। एक अंग्रेज डा० का कहना है कि एक कुत्ता जिसे केवल कल के आटे की रोटी खिलाई जाती थी, कमजोर होकर मर गया और दूसरा कुत्ता जिसे दूसरा आटा खिलाया जाता था, स्वस्थ बना रहा। फिर भी स्वाद की दृष्टि से इसकी माँग अधिक

है। इसकी रोटियाँ कड़ी और स्वादहीन होती हैं। कभी-कभी वे इतनी कड़ी हो जाती हैं कि हाथ से तोड़ना भी कठिन हो जाता है। सबसे अच्छा आटा वह है जो गेहूँ को कूट-छांट कर चक्की में स्वयं पीसकर तैयार किया जाता है। इसका प्रयोग बिना छाने करना चाहिए। इसकी बनी रोटियाँ स्वादिष्ट और मुलायम होती हैं। पोषक होने के कारण यह देर तक ठहरती है। बाज़ार की रोटियाँ यद्यपि देखने में भली और आकर्षक मालूम होती हैं, लेकिन वे बिल्कुल व्यर्थ और हानिकारक होती हैं। उसमें चर्बी चुपड़ी होने के कारण हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए समान आपत्तिजनक होती है। गेहूँ के बनाने का दूसरा तरीका यह है कि गेहूँ को दल लिया जाय और उसमें दूध और खाँड मिलाकर पका लिया जाय। यह बहुत स्वादिष्ट तथा बल-वर्द्धक होता है।

चावल दाल, घी और दूध की तरह पुष्टिकर नहीं होता। तरकारियाँ केवल स्वाद के लिये खाई जाती हैं। इनमें एक तत्त्व होता है जो खून को कुछ अंश में साफ करता है। लेकिन घास होने के कारण यह देर से पचता है। जो इनका अधिक व्यवहार करते हैं उन्हें प्रायः अपच हो जाती है। इसलिए हमें तरकारी उचित परिमाण में खाना चाहिए।

हर एक दाल पचने में भारी होती है। दाल में सिर्फ यही गुण है कि जो इसे अधिक खाता है, उसे देर तक भूख नहीं लगती; बल्कि कभी-कभी बदहजमी हो जाती है। जो कठिन परिश्रम करते हैं, वे दाल हज्जम कर सकते हैं और इससे लाभ उठा सकते हैं।

जो अमीरी जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें इससे परहेज रखना चाहिए। इंग्लैंड का एक बड़ा लेखक डा० हेग का कहना है कि दाल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। और पेट में एक प्रकार की एसिड पैदा करती है, जिसके कारण अनेक रोग उत्पन्न होकर शरीर को असमय वृद्ध बना देते हैं। इसके लिए दलीलें पेश करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन मैं भी इस अनुभव से सहमत हूँ। जो दाल का परित्याग नहीं कर सकते उन्हें इसे सावधानी से खाना चाहिए।

करीब २ सारे हिन्दुस्तान में तरह-तरह के मसाले और बघार बहुतायत से प्रयोग किये जाते हैं जो किसी और देश में नहीं किये जाते। अफ्रीका के हब्शी लोग भी हम लोगों के मसालों से नफरत करते हैं। यदि अंग्रेज मसाले खायें तो उनके पेट की पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है और उनके चेहरे पर दाग पड़ जाते हैं, जिसे मैं अपने निजी अनुभव से जानता हूँ। सच बात तो यह है कि मसाला कोई खाने की सामग्री नहीं है। लेकिन चूँकि हम लोग बहुत दिनों से इसका प्रयोग करते चले आये हैं इसलिए उसका स्वाद हमारी इच्छा को बढ़ाता है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि स्वाद के लिए कोई भोजन करना हानिकारक है। तब फिर यह बात कैसे हुई कि मसाले का अधिक प्रयोग होना चाहिए। प्रायः लोग यही कहा करते हैं कि पाचन-शक्ति बढ़ाने के लिए मिर्च, धनियाँ इत्यादि का प्रयोग आवश्यक है, किन्तु इससे तो नकली भूख बढ़ती है, जिसका प्रभाव शरीर पर

अच्छा नहीं पड़ता। जो इन्हें अधिक खाते हैं, उन्हें बहुधा दस्त की बीमारी होती है। मुझे मालूम है कि एक युवा आदमी अधिक मसाला खाने से अपने युवा काल ही में मर गया। अतः इसका परित्याग सर्वथा आवश्यक है।

जो कुछ मसाले के विषय में कहा गया है, वही नमक के विषय में भी कहा जा सकता है। कितने ही इस बात को सुनकर चौंक पड़ेंगे; लेकिन यह एक अनुभव सिद्ध बात है। इंग्लैण्ड में एक स्कूल है जिसका यह मत है कि नमक मसाले से भी हानिकर है। जो शाक हम लोग खाते हैं उसमें आवश्यकतानुसार नमक का हिस्सा मौजूद है। अतः ऊपर से नमक मिलाने की कोई आवश्यकता नहीं। आवश्यकता से अधिक नमक हमारे शरीर के पसीने द्वारा या और किसी दूसरे तरीके से बाहर निकल आता है। प्रकृति ने आवश्यकतानुसार सभी खाद्य पदार्थों में नमक का हिस्सा छोड़ रक्खा है। एक लेखक का यह कहना है कि नमक खून को विषैला बना देता है। वह यह भी कहता है कि जो लोग बिल्कुल नमक नहीं खाते उनका खून इतना स्वच्छ रहता है कि साँप के विष का भी प्रभाव उन पर कुछ नहीं पड़ता। हम नहीं कह सकते कि यह कहाँ तक सच है; लेकिन अपने निजी अनुभव से यह कह सकता हूँ कि दमा जैसे बहुत से रोग नमक छोड़ देने से शीघ्र आराम हो जाते हैं। दूसरी बात यह कि इसके छोड़ देने से किसी को कुछ हानि होते नहीं देखी गयी, बल्कि उन्हें कुछ लाभ ही होता है। मैंने स्वयं दो वर्ष से

नमक छोड़ दिया है और उसका परित्याग मुझे ज़रा भी नहीं अखरता। बल्कि कुछ अंश में मुझे लाभ ही हुआ है। अब मुझे पहले जैसा बार-बार पानी नहीं पीना पड़ता। मेरे नमक छोड़ने का कारण बड़ा ही अद्भुत है। अपनी स्त्री के रोग के कारण मुझे ऐसा करना पड़ा और वह इसके बाद अधिक बीमार न पड़ी; बल्कि उसी अवस्था में रही। यह मेरा विश्वास है कि यदि रोगी ने स्वयं इसे छोड़ दिया होता तो उसे पूरा लाभ अवश्य होता। जो नमक छोड़ेंगे उन्हें दाल और शाक भी छोड़ना पड़ेगा। यह एक बड़ा कठिन काम है। मुझे विश्वास है कि शाक और दाल नमक बिना हज़म नहीं हो सकते। इसका यह मतलब नहीं कि नमक पाचन-शक्ति को बढ़ाता है, उससे केवल ऐसा होते प्रतीत होता है और उसका परिणाम बुरा होता है। यदि कोई आदमी नमक छोड़ दे तो कुछ दिन तक उसे कुछ अड़चन मालूम होगी। लेकिन यदि वह अपने धैर्य को कायम रखेगा तो थोड़े ही दिनों में उसे बहुत लाभ हो सकता है।

मैं दूध को भी त्याज्य कहने का साहस करता हूँ। यह मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर कहता हूँ जिसे यहाँ विस्तृत रूप से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं समझता। दूध को सब लोग लाभकारी समझने के भ्रम में हैं। उनका विश्वास इतना अटल है कि उनके सामने इसे सर्वथा त्याज्य सिद्ध करना ज़रा कठिन है। जैसे कि मैं पहले कई बार कह चुका हूँ कि मेरे पाठक मेरी दलीलों को अक्षरशः मान लेंगे—ऐसा मेरा

विश्वास नहीं है। मैं यह भी नहीं मानता कि यदि कोई तर्क द्वारा इसे मान भी ले तो वह उसे कार्य्य रूप में परिणित करेगा। खैर ! मुझे जो सत्य प्रतीत होता है उसे कह देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ; चाहे पाठक अपने ही सिद्धान्त को क्यों न मानें। डाक्टरों का मत है कि दूध में एक प्रकार की ज्वरोत्पादक शक्ति है। उन्होंने इसे सिद्ध भी किया है। बीमारी फैलाने वाले कीड़े जो हवा में रहते हैं शीघ्र ही दूध में प्रवेश कर जाते हैं और उसे विषैला बना देते हैं। अतः दूध को सर्वथा स्वच्छ रखना कठिन है। दक्षिण अफ्रीका में दूध के उबालने, उसे रखने, उस के वर्तनों को साफ करने के विषय में कुछ सरकारी कानून बनाये गये हैं। जब इसके लिए इतनी सावधानी तथा परिश्रम की आवश्यकता है तो हम कह सकते हैं कि यह वस्तु ग्रहण करने योग्य हैं ?

इसके अतिरिक्त दूध का शुद्ध होना गाय के भोजन और उसके स्वास्थ्य पर निर्भर है। डाक्टरों ने इसकी जाँच की है कि जो मनुष्य रोगी गाय का दूध पीता है उसे गायके रोग की छूत लग जाती है और फलतः वह भी रोग ग्रस्त हो जाता है। स्वस्थ गाय कठिनता से मिलती है, अतः शुद्ध दूध का भी मिलना कठिन है। सब लोग जानते हैं कि जो बच्चा रोगी माँ का दूध पीता है उसे भी माँ का रोग हो जाता है। साथ ही यदि बच्चा बीमार पड़ता है तो उसके रोग की औषधि उसकी माँ को इसीलिए दी जाती है कि उसका दूध पीने से औषधि का

प्रभाव बच्चे पर पड़ेगा। ठीक इसी तरह जैसा गाय का स्वास्थ्य होगा—उसका दूध पीने वाले का भी स्वास्थ्य वैसा ही होगा। अब सोचना चाहिए कि जब दूध को इतने हानि के साथ पीया जाता है तो क्या वह सर्वथा त्याज्य नहीं है? खासकर ऐसी अवस्था में जबकि हमें उससे भी अधिक पोषक पदार्थ सुलभ हैं। जैतून का तेल और मीठे बादाम में भी वे ही गुण हैं जो दूध में। बादाम को पहले पानी में उबाल लेना चाहिए। उसका छिलका छुड़ाकर तथा उसे खूब महीन पीसकर पानी में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। इस तरह यह एक अच्छी पेय तैयार हो जाती है जिसमें दूध के सभी गुण मौजूद रहते हैं। और यह उन दोषों से रहित होता है।

अच्छा, अब इसके प्राकृतिक नियमों की ओर ध्यान दीजिये। बछड़ा तभी तक दूध पीता है जब तक कि उसके दांत नहीं निकल आते। ज्योंही उसके दांत निकल आते हैं त्योंही वह खाने लगता है। प्रकृति ने मनुष्य को भी ऐसा ही बनाया है। बाल्यकाल बीत जाने पर हम दूध पीते रहें ऐसा प्रकृति नहीं चाहती। हमें फल, बादाम, रोटी, सेब वगैरह पर ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। जब दांत निकल आवें तब दूध को छोड़ देने से, कितना धन और समय का बचाव होगा, इस पर विचार करने का समय नहीं है। सब लोग इसका विचार स्वयं कर सकते हैं। दूध की बनी हुई चीजों की भी कोई आवश्यकता नहीं है। मट्टे की जगह खट्टे निम्बू का

रस और घी के जगह तेल का प्रयोग कर सकते हैं ।

मनुष्य के शरीर की बनावट को ध्यान पूर्वक देखने से पता चलता है कि माँस मनुष्य का प्राकृतिक भोजन नहीं है । डा० हेग एवं किंग्सफोर्ड ने हम लोगों पर माँस का जो बुरा प्रभाव पड़ता है—उसे साफ २ दिखला दिया है । वे इस बात को भली प्रकार समझा चुके हैं कि माँस भी दाल की तरह हानि पहुँचाने वाली वस्तु है । इससे दाँत असमय गिर जाते हैं और दमे की बीमारी होजाती है । इससे मनुष्य का खून उत्तेजित होकर स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है । हम पहले ही कह आये हैं कि यह भी एक प्रकार का रोग है । बड़े शर्म की बात है कि बहुत से विचारशील और बुद्धिमान शाकाहारी मनुष्य इसके गुण-अवगुणों को जानते हुए भी माँसाहारी बने हुये हैं । अन्त में हम इसी नतीजे पर आते हैं कि बहुत कम मनुष्य ऐसे हैं जो फलाहार पर जीवन बिताते हैं । फिर भी हम निःसंकोच कह सकते हैं कि गेहूँ और मीठा बादाम खाकर रहना बहुत आसान है ।

सारांश यह कि फल पर जीवन व्यतीत करने वाले लोग बहुत कम हैं । फल, गेहूँ और जैतून के तेल पर रहना बहुत लाभप्रद है । फलों में केले का स्थान सर्वप्रथम है । केला, सन्तरा, खजूर, अंगूर और आलूचा भी अत्यन्त पुष्टिकर हैं और रोटी के साथ खाये जा सकते हैं । जैतून के साथ रोटी स्वादहीन नहीं होती । ऐसे भोजन में अड़चन कम है और पैसे भी कम खर्च होते हैं । इस भोजन में नमक, मिर्च, दूध और चीनी की

आवश्यकता नहीं पड़ती। खाली चीनी खाना तो बहुत ही हानिकारक है। अधिक मिठाई खाने से दाँत खराब होते हैं और स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। अच्छा खाद्य-पदार्थ गेहूँ, बादाम, मूँगफली और अरारोट से बनाया जा सकता है। इससे स्वास्थ्य भी सुधर सकता है।

दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि हमें दिन भर में कितना और कितनी बार खाना चाहिए। इस महत्त्वपूर्ण विषय का उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे।

हमें कितना और कितनी बार खाना चाहिए

भोजन के परिमाण के विषय में डाक्टरों की राय में भिन्नता पाई जाती है। एक डाक्टर का कहना है कि अपनी इच्छानुसार खूब खाना चाहिए। इसने गुणों के अनुसार भोजन की मात्रा भी बना दी है। दूसरे की यह राय है कि मजदूर और दिमागी काम करने वालों के भोजन का औसत और गुण अलग होना चाहिए। तीसरे डा० की राय है कि धनी और मजदूर दोनों को समान भोजन मिलना चाहिए। यह सभी स्वीकार करेंगे कि कमजोर मनुष्य बलवान की तरह नहीं खा सकता है। इसी तरह एक स्त्री एक पुरुष की अपेक्षा कम भोजन करती है और बच्चे तथा बूढ़े नौजवानों से कम खाते हैं। एक लेखक का यहाँ तक कहना है कि यदि हम लोग भोजन को इस तरह कुचलें कि वह अच्छी तरह लार में मिल जाय तो हम ५ से १० तोले पर ही अपना गुजर कर सकते हैं। वह अपने अनुभवों के आधार पर यह कहता है और उसकी इस विषय की पुस्तकों की हजारों प्रतियाँ बिक चुकी हैं। यह देखते हुए भोजन का वजन बताना उचित प्रतीत नहीं होता है।

अधिकांश डाक्टरों का कहना है कि ६६ प्रतिशत मनुष्य जरूरत से अधिक खाते हैं। यह प्रति दिन के अनुभव की बात है यह जो डा० के लिखे बिना भी जानी जा सकती है। कम भोजन करने से स्वास्थ्य के हानि की बिल्कुल सम्भावना नहीं।

जहाँ तक हो सके भोजन की मात्रा कमही करनी चाहिए ।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है भोजन को खूब कुचलने की आवश्यकता है । ऐसा करने से हमें थोड़ी खूराक से भी सत्व मिल सकता है जो अत्यन्त ही लाभप्रद है । अनुभवी लोगों का कहना है कि जो आदमी पच जाने योग्य भोजन करता है, उसको अच्छी तरह चबाता है और आवश्यकता से अधिक नहीं खाता उसका पाखाना कड़ा, चिकना, थोड़ा, काले रंग का और दुर्गन्ध रहित होता है । जिसकी टट्टी इस प्रकार खुलासा न हो तो उसे समझ लेना चाहिए कि वह अधिक भोजन करता है और उसे अच्छी तरह कुचल कर नहीं खाता है । इस तरह मनुष्य को अपनी टट्टी से अधिक और कम खाने की बात मालूम हो सकती है । स्वप्न देखना, नींद का न आना और जबान पर मैल जमा रहना अधिक भोजन करने की पहचान है और यदि रात में उसको बार २ पेशाव करना पड़े तो उसे समझना चाहिए कि उसने अधिक रसदार चीजों को खा लिया है । ऐसा करने से प्रत्येक मनुष्य अपनी खूराक की उचित मात्रा पर पहुँच सकता है । बहुतों को खट्टी डकार आती है यह भोजन न पचने की पहचान है । अधिक खाने से बहुतों के पेट में वायु-विकार पैदा हो जाता है । इस का मुख्य कारण यह है कि हम लोग अपने पेट को पाखाना बना लिए हैं जिसे हर जगह लिए फिरते हैं । जब हम इन बातों पर विचार करते हैं तो अपने व्यक्तित्व पर हमें घृणा होती है अगर हम लोग अधिक खाने के पाप से बचना चाहते

हैं तो हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम किसी भी दावत में भाग न लें। हमारे यहाँ जब कोई मिहमान आ जाय तो उन्हें स्वास्थ्य के नियमों को ध्यान में रखते हुये खिलाना चाहिए। हम लोग अपने मित्रों को केवल जल पीने के लिए या साथ में मिलकर दांत साफ करने के लिए तो कभी निमंत्रित नहीं करते। क्या भोजन करने का नियम स्वास्थ्य के लिए आवश्यक नहीं है? हम लोग इतना पेटू हो गये हैं कि हमारी जिह्वा सदा स्वादिष्ट भोजन चाहती है; इसीलिए हम लोग अपने मिहमानों को स्वादिष्ट भोजन कराते हैं कि जब हम भी उन के यहाँ जायेंगे तो वे भी हमें वैसा ही भोजन करायेंगे। भोजन के एक घंटे बाद यदि हम स्वच्छ शरीर वाले मित्र से अपने मुँह को सूँघने के लिए कहें और उसके वास्तविक विचार जानें तो हमें अपना मुँह लज्जा से छिपाना पड़ेगा। लेकिन कुछ मनुष्य ऐसे निर्लज्ज होते हैं कि खाने के बाद शीघ्र ही कोई चूर्ण खा लेते हैं ताकि वे फिर खा सकें। कभी-कभी तो वे जो कुछ खाये रहते हैं उसकी उल्टी भी कर देते हैं और फिर भी भोजन के लिए बैठ जाते हैं।

चूँकि हम लोग अधिक भोजन करने के थोड़े-बहुत अपराधी हैं इसलिए हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए धार्मिक दृष्टि से कभी-कभी व्रत रखने के नियम बनाये हैं। सचमुच स्वास्थ्य के विचार से एक पक्ष में एक दिन उपवास करना जरूरी है। बहुत से धार्मिक हिन्दू वर्षा काल में एक ही वक्त खाते हैं। यह स्वास्थ्य

के नियम का ही पालन है; क्योंकि जब वायु में अधिक भाप होता है और आसमान में बादल घिरे होते हैं तब हम लोगों की पाचन-शक्ति भी कुछ कम हो जाती है। अतः भोजन की मात्रा उन दिनों में कुछ कम करनी चाहिए।

अब हमें यह विचार करना है कि दिन में कितनी बार खाना चाहिए। हिन्दुस्तान के अधिकांश मनुष्य दो बार खाकर रहते हैं। जो कठिन परिश्रम करते हैं वे तीन बार खाते हैं; लेकिन अंग्रेजी औषधि द्वारा चार बार खाने का आविष्कार हुआ है। अब इंग्लैण्ड और अमेरिका में ऐसे समाज बने हैं जो केवल दो बार खाने का प्रचार करते हैं। उनका कहना है कि हमें सुबह में जलपान नहीं करना चाहिए; क्योंकि हम लोगों की नींद ही इस कमी को पूरा कर देती है। सवेरे उठकर हमें काम में लग जाना चाहिए और तीन घण्टे काम करने के बाद खाना चाहिए। जो इस नियम पर चलते हैं वे केवल दो बार भोजन करते हैं। डीवे नामक एक अनुभवी डाक्टर ने उपवास के लाभ पर एक अच्छी पुस्तक लिखी है, जिसमें सुबह का जलपान छोड़ देने के लाभ को अच्छी तरह समझाया है। मैं भी अपने अनुभव से यही कहता हूं कि दो बार से अधिक खाने की आवश्यकता नहीं है।

व्यायाम

व्यायाम भी स्वास्थ्य के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि हवा, पानी और भोजन । फुटबाल, हाकी तथा क्रिकेट या टहलने ही को केवल व्यायाम नहीं कहते, बल्कि तमाम शारीरिक तथा मानसिक कार्य व्यायाम ही में सम्मिलित हैं । भोजन की तरह, व्यायाम भी शारीर तथा मस्तिष्क के लिये आवश्यक है । इसके बिना दिमाग भी वैसे ही कमजोर पड़ जाता है जैसे कि शरीर । कमजोर दिमाग एक तरह का रोग है । एक पहलवान वास्तव में तब तक पहलवान नहीं कहा जा सकता, जब तक कि उसका दिमाग भी उसके शरीर ही की तरह पुष्ट न हो । हम पहले ही कह चुके हैं कि पुष्ट दिमाग का पुष्ट शरीर में होना ही वास्तविक और सच्चा स्वास्थ्य है ।

अब यह विचार करना है कि कौन से व्यायाम ऐसे हैं जो शरीर और दिमाग दोनों के लिए पुष्टिकर हैं । वास्तव में प्रकृति ने हमें ऐसा बना रखा है कि हमारे शरीर और दिमाग दोनों को एक ही साथ काम में लाया जा सकता है । संसार में अधिकांश मनुष्य कृषि पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं । किसान को अन्न-वस्त्र के लिए लगातार आठ-दस घण्टे काम करना पड़ता है और कभी-कभी तो इस से भी अधिक । जब तक दिमाग मजबूत न हो, लगातार कठिन परिश्रम असम्भव है । किसान प्रायः कृषि सम्बन्धी सभी कामों को करता है इसके

लिये उसे मिट्टी और ऋतु का ज्ञान होना आवश्यक है । यहाँ तक कि उसे सूर्य, चन्द्रमा और तारों की चाल की भी जानकारी चाहिये । योग्य से योग्य आदमी किसानों से इस सम्बन्ध में हार जाते हैं । वह अपने आवश्यक कार्यों के विषय में काफी ज्ञान रखता है । वह तारों को देख कर रात में दिशा का ज्ञान कर लेता है और चिड़िया तथा चौपायों के बारे में भी काफी अनुभव रखता है । जब एक खास किस्म की चिड़ियाँ एकत्रित होकर चहकने लगती हैं तो वह समझ जाता है कि कब वर्षा होगी । यहाँ तक कि पृथ्वी और आकाश के विषय में भी वह ज्ञान रखता है चूँकि उसे अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ता है इसलिये वह धर्म सम्बन्धी बातों का भी ज्ञान रखता है । लम्बे-चौड़े आसमान के नीचे रहने के कारण वह ईश्वर के अस्तित्व को आसानी से समझ सकता है ।

सभी लोग किसान नहीं हो सकते और न इस विषय में लिखने के लिए यहाँ काफी स्थान ही है । लेकिन चूँकि वे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं, इसलिये उनके विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत हुआ । यदि हम प्राकृतिक नियमों को भंग करते हैं तो अवश्य ही उसके कारण हमें स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ क्षति सहन करनी पड़ती है । किसान ही के जीवन से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें दिन में कम से कम आठ घण्टा मानसिक और शारीरिक परिश्रम करना

चाहिये । व्यवसायी और अन्य लोगों को अवश्य कुछ काम करना पड़ता है, लेकिन उनका काम भी केवल मानसिक होने के कारण व्यायाम नहीं कहा जा सकता है ।

पाश्चात्य देशों में ऐसे लोगों के लिए क्रिकेट, फुटबाल या ऐसे ही छोटे-छोटे खेलों का प्रबन्ध किया गया है । मानसिक व्यायाम के लिए किताब इत्यादि पढ़ने का प्रबन्ध किया गया है । ऐसे खेल शारीरिक व्यायाम के लिये कुछ अंश में उपयुक्त हो सकते हैं । लेकिन इनसे मानसिक व्यायाम नहीं होता । इन खिलाड़ियों से में कोई भी अपने मानसिक व्यायाम के लिए विख्यात नहीं हो सका है । कितने ही हिन्दुस्तानी राज-कुमार अपने खेल की कला में विख्यात हो गये हैं । हम अपने अनुभव से कह सकते हैं कि ऐसे खिलाड़ियों में मानसिक ताकत नहीं होती । इंगलैंड के लोग ऐसे खेलों के बहुत प्रेमी होते हैं । लेकिन इन्हीं लोगों का किपलिंग नामक एक कवि उनके मस्तिष्क की शिकायत करता है ।

हम हिन्दुस्तानियों का ढंग ही निराला है । हम में से बहुत कठिन मानसिक परिश्रम करते हैं । परन्तु शारीरिक व्यायाम की ओर ध्यान ही नहीं देते । उनका शरीर मानसिक परिश्रम के कारण कमजोर पड़ जाता है और वे अनेक रोगों के शिकार बन जाते हैं । यहीं तक नहीं बल्कि जब संसार उनसे कुछ उपयोगी कामों की आशा करता है, तब वे असमय में ही इस संसार से उठ जाते हैं । हम लोगों के दोनों तरह के काम सीमा

के अन्दर होना चाहिये । साथ ही ऐसा न होना चाहिये जिससे शारीरिक सुख की प्राप्ति हो । आदर्श व्यायाम वह है, जिससे शरीर एवं मस्तिष्क दोनों को लाभ पहुँचता हो । केवल ऐसा ही व्यायाम मनुष्य को स्वस्थ बना सकता है और ऐसा ही मनुष्य सच्चा किसान हो सकता है ।

लेकिन यह प्रश्न हो सकता है कि जो किसान नहीं हैं, वे क्या करें ? क्रिकेट के खेल का व्यायाम उपयुक्त नहीं है । किसी दूसरे व्यायाम की व्यवस्था करनी चाहिये । साधारण आदमियों के लिये सब से उत्तम व्यायाम यह हो सकता है कि वे अपने घर के निकट या पास के हाते में एक अच्छी सी फुलवाड़ी लगावें और उसी में प्रतिदिन कुछ काम किया करें । कुछ लोगों का यह प्रश्न हो सकता है कि जिस घर में हम रहते हैं वह यदि अपना न हो तो क्या करें ? लेकिन यह एक मूर्खता का प्रश्न है क्योंकि चाहे जो कोई भी उस मकान का मालिक क्यों न हो उसे अपनी ज़मीन को इस प्रकार खोदकर बोनो देने में कुछ भी आपत्ति न होगी । ऐसा करने से हमें भी प्रसन्नता होगी कि हमने किसी दूसरे की ज़मीन को खोद बो कर साफ़ किया । वे लोग जिन्हें ऐसा व्यायाम करने का समय नहीं मिलता, या जो इसे पसन्द नहीं करते—टहलने का अभ्यास कर सकते हैं, क्योंकि उसके बाद यह भी एक अच्छा व्यायाम है । साधु और फकीर लोग बहुत स्वस्थ हुआ करते हैं । इसका कारण यही है कि वे लोग देश भर में पैदल भ्रमण करते हैं ।

थोरो जो अमेरिका का एक प्रसिद्ध विद्वान और लेखक है, इसकी प्रशंसा करते हुए इससे होने वाले अनेक लाभों को लिखता है। उसका कहना है कि ऐसे मनुष्य का लेख, जो सदा घर में रहता है और कभी बाहर टहलने नहीं जाता वैसा ही कमजोर होता है जैसा कि उसका शरीर। वह अपने को ही संकेत करके कहता है कि मेरे सभी लेख उन्हीं दिनों लिखे जा सके जब कि मैं टहलने का खूब अभ्यास रखता था। वह टहने में इतना अभ्यस्त था कि दिन में चार-पांच बार टहलना उसके लिये एक साधारण बात थी।

व्यायाम के लिये हम लोगों की इच्छा इतनी प्रबल होनी चाहिये कि किसी भी अवस्था में हतोत्साह न हों। हम लोग इस बात को नहीं समझ पाते कि शारीरिक व्यायाम के बिना हमारा मानसिक कार्य भी अधूरा और नीरस रह जाता है। चलने से शरीर के प्रायः सभी अवयव हिलते डोलते हैं जिससे शरीर में खून का दौरा ज्यादा हो जाता है। क्योंकि जब हम तेज चलते हैं तो ताज़ी हवा हमारे फेफड़ों में प्रवेश करती है, इसके अतिरिक्त हम प्राकृतिक दृश्य और उसकी सुन्दरता को देख कर प्रसन्न हो जाते हैं। सड़क और गन्दी गलियों में टहलना व्यर्थ है। हमें मैदान या जंगल भाड़ियों में टहलना चाहिए, जहाँ कि हमें प्राकृतिक दृश्य देखने को मिल सकें। एक या दो मील टहलना नहीं टहलने के बराबर है। कम से कम दस या बारह मील टहलना आवश्यक है। जिनको टहलने के लिए इतना अवकाश नहीं मिलता वे रविवार को ऐसा कर

सकते हैं ।

एक बार एक आदमी जिसको अजीर्ण का रोग हो गया था एक डाक्टर के पास गया । डाक्टर ने उसे प्रति दिन थोड़ा टहलने की सलाह दी । लेकिन वह ऐसा करने में अपने को सर्वथा असमर्थ बतलाता था । तब डाक्टर उसे अपनी गाड़ी में बैठा कर टहलने के लिए ले गया । डाक्टर ने रास्ते में जान बूझ कर अपना कोड़ा ज़मीन पर गिरा दिया । यह देख कर रोगी कोड़ा लाने के लिये नीचे उतरा । डाक्टर ने रोगी लिये उपयुक्त मौका देख कर गाड़ी आगे बढ़ा दी । लाचार होकर रोगी को गाड़ी के पीछे-पीछे पैदल दौड़ना पड़ा । जब डाक्टर ने देखा कि रोगी काफी थक चुका है तो गाड़ी रोक दी और उसे गाड़ी में बैठा लिया । डाक्टर ने रोगी को समझाया कि पैदल चलवाने के लिए ही उसने ऐसा किया था ।

अब पैदल चलने से उस आदमी को भूख लग गई इसलिए वह डाक्टर के आदेश के महत्व को समझ गया और उसे कोड़ा लाने में जो तकलीफ हुई थी उसे भूल गया । घर जाकर उसने अच्छी तरह भोजन किया । जिन्हें अपच या और कोई ऐसी ही बीमारी होती हो तो वे नियमपूर्वक टहलने का अभ्यास करें उन्हें शीघ्र ही टहलने के लाभ समझ में आ जायेंगे ।

पोशाक

पोशाक भी स्वास्थ्य के लिए किसी हद तक आवश्यक है। यूरोपीय महिलायें अपनी शोभा बढ़ाने के लिए ऐसी पोशाक पहनती हैं जिससे पैर छोटा और कमर पतली रहे। इसके कारण उन्हें अनेक बीमारियाँ हुआ करती हैं। चीन में स्त्रियों के पैर जान-बूझकर हमारे यहाँ के बच्चों के पैर से भी छोटे कर दिये जाते हैं, जिसके फलस्वरूप उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। उपरोक्त बातों से अब पाठक समझ गये होंगे कि स्वास्थ्य का सम्बन्ध कुछ अंश में पहिनावे से भी अवश्य है। पोशाक के विषय में हमें अपने बड़े-बूढ़ों का अनुकरण करना पड़ता है। पोशाक के मुख्य उद्देश्य को हम लोग भूल गये हैं और उसे अपने देश, धर्म और जाति का सूचक मानने लगे हैं। ऐसी हालत में खासकर स्वास्थ्य के लिहाज से पोशाक के विषय में विचार करना कठिन प्रतीत होता है। लेकिन इस तरह के वाद-विवाद से हमें अधिकांश लाभ ही होता है। कपड़े, जूते और गहने की भी गणना पोशाक में की जाती है।

पोशाक का मुख्य उद्देश्य क्या है ? इसे कम लोग जानते हैं, आदि काल में मनुष्य कपड़ा नहीं पहनते थे। चारों तरफ नंगा फिरा करते थे। वे अपने गुप्त भाग को ढक लेते थे, शेष सारे शरीर को खुला रखते थे जिससे उनकी त्वचा कठिन और बलिष्ठ हो जाती थी। जिससे वे हवा और पानी की अच्छी तरह सहन

कर लेते थे, उन्हें कभी ठण्डक नहीं लगती थी। जैसा कि हवा के प्रकरण में वर्णन किया गया है कि हम केवल नाक से ही हवा नहीं लेते बल्कि शरीर के रोम-छिद्रों द्वारा भी अपने अन्दर हवा लेते हैं। अतः जब हम कपड़ा पहन लेते हैं तो शरीर के चमड़े की एक बहुत बड़ी क्रिया को रोक देते हैं। ठण्डे देश के लोग ज्यों-ज्यों आलसी एवं सुस्त होते गये उन्हें कपड़े की आवश्यकता प्रतीत होती गई। जब वे ठण्ड बरदाश्त नहीं कर सके तब पोशाक की प्रथा चल पड़ी। अन्त में लोगों ने पोशाक को आभूषण का स्थान दे दिया। अब तो पोशाक जाति, देश का भेद बताने के लिए आवश्यक हो गयी है।

सचमुच प्रकृति की तरफ से मनुष्य को चमड़े की एक अच्छी पोशाक मिली है। यह केवल हम लोगों का भ्रम है कि शरीर नङ्गा रहने से बुरा मालूम होता है; क्योंकि अच्छा-से-अच्छा चित्र तो नंगी दशा में ही दिखलाया जाता है। पोशाक से हम अपने अंगों को ढक कर उनका दोष छिपाते हैं और इस तरह प्रकृति के कामों में बाधा पहुँचाते हैं। भेष बनाने में भी हम पैसे को बरबाद करते हैं। सब प्रकार से मनुष्य अपना सौन्दर्य बढ़ाना चाहता है। शीशे में मुँह देखकर अपनी सुन्दरता पर इतराता है। अगर ऐसे स्वभाव से हम लोगों के नज़रों में कुछ अन्तर न पड़े तो हम सोच सकते हैं कि मनुष्य का सब से सुन्दर रूप नग्न अवस्था ही में दिखलाई देता है और उसी से वह स्वस्थ भी रह सकता है। शायद कपड़ों से सन्तुष्ट न होकर

हम लोग गहना पहनना भी अपना कर्त्तव्य समझने लगे हैं ।

अधिकांश मनुष्य भी पैरों में कड़े, कानों में वाला और हाथ में अँगूठी पहनते हैं । इनसे बीमारी उत्पन्न होती है । यह जानना मुश्किल है कि इनके पहनने से कौनसी शोभा बढ़ती है । इस विषय में स्त्रियों ने तो और भी कमाल कर डाला है । वे पैरों में वज्रनी कड़े और पायजोब पहनती हैं जिससे पैर उठाना भी कठिन हो जाता है । नाक में वज्रनी नथ लटकी रहती है और कानों में बालियाँ गुँथी रहती हैं । हाथों के गहने का तो कुछ पूछना ही नहीं है । इस पहिनावे से उनके शरीर पर मैल जमी रहती है । कान और नाक में तो खूब ही मैल जम जाती है । वे इस तरह के अपने गन्दे बनाव को शृङ्गार समझती हैं और पैसा पानी की तरह बहाती हैं । ऐसा करके अपनी जान को खतरे में डालते वे कुछ भयभीत नहीं होतीं । हम लोग अभिमान के कारण मूर्ख बन बैठे हैं । ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि कितनी ही स्त्रियाँ कानों में फोड़ा हो जाने पर भी अपनी बालियाँ नहीं उतारतीं । फोड़ों से हाथ पक जाने पर भी ज़ेवर नहीं उतारतीं । यद्यपि उनकी अँगुलियाँ सूज जाती हैं फिर भी वे अँगूठियों को इस ख्याल से नहीं निकालतीं कि उनकी सुन्दरता में कुछ कमी आजावेगी ।

पहिनावे में पूर्ण सुधार करना साधारण बात नहीं है । लेकिन कम-से-कम हम सभी के लिए यह मुमकिन है कि अपने सब गहने और अनावश्यक पहिनावे को छोड़ दें । रीति-रिवाज के लिए उनमें से कुछ का प्रयोग कर सकते हैं और शेष को अलग

कर सकते हैं। जिनकी यह धारणा है कि ये सब पहिनावे केवल दिखावा-मात्र हैं वे अपने पहिनावे में बहुत कुछ परिवर्तन कर सकते हैं और ऐसा कर अपने को स्वस्थ रख सकते हैं।

आजकल अधिकतर लोगों का यह ख्याल हो गया है कि अपनी प्रतिष्ठा और सुन्दरता के लिए अंग्रेजी ढंग की पोशाक आवश्यक है। इस विषय पर यहाँ तर्क करने का स्थान नहीं है। यहाँ पर इतना ही कह देना काफी है कि अंग्रेज लोगों की पोशाक उनके ठण्डे मुल्क के लिए भले ही उपयुक्त हो, लेकिन वह हिन्दुस्तान के लिए बेकार है। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, उनके लिए हिन्दुस्तानी पोशाक ही स्वास्थ्यकर होता है। हम लोगों का वस्त्र ढीला और खुला होता है। अतः हमारे शरीर में हवा के प्रवेश करने में कोई अड़चन नहीं होती। काले कपड़ों में सूर्य की गर्मी रुक जाने से वह गर्म रहता है और शरीर को भी गर्म रखता है। सिर को पगड़ी से ढके रहना हमारे लिए एक साधारण बात हो गई है। जहाँ तक सम्भव हो सिर को खुला रखना चाहिए। बाल को बढ़ाना, कंघी करना और बीच से माँग निकालना जंगलीपने की निशानी है। बड़े हुए बालों में मैल और जूँ पड़ जाते हैं। अगर बालों के अन्दर फोड़ा निकल आवे तो उचित औषधि करना भी कठिन हो जाता है। खास कर उन लोगों के लिए जो पगड़ी का प्रयोग करते हैं, बाल बढ़ाना मूर्खता है।

पैरों के द्वारा भी हम बहुत से रोगों के शिकार हो जाते हैं। बूट

और जूते पहनने वालों के पैर गन्दे हो जाते हैं और पसीना देने लगते हैं। जूता और मोजा उतारते समय—जिसे बदबू की पहचान होगी, उसका वहाँ खड़ा रहना मुश्किल हो जाता है। जूते का दूसरा नाम कंटकारी है। इससे यह साबित होता है कि जब हमें काँटों में, ठंडक में अथवा धूप में चलना पड़े तभी जूतों को पहनना चाहिए और वह भी इस तरह के जिनसे केवल तलवे ढक सकें और सारा पैर खुला रहे। खड़ाऊं से यह आवश्यकता पूरी हो सकती है। जिनके सिर में दर्द रहता हो, शरीर निर्वल हो पैरों में दर्द होता हो उनके लिए तो हमारी यह राय है कि वे नंगे पांव चलने का अभ्यास करें। ऐसा करने से वे शीघ्र लाभ का अनुभव करेंगे।

पुरुष-स्त्री का संयोग

पिछले प्रकरणों के पढ़ने वालों से मेरी प्रार्थना है कि वे इस प्रकरण को और भी ध्यान से पढ़ें। और इस पर विचार करें। क्योंकि यह विषय बहुत गम्भीर और महत्वपूर्ण है। अन्य प्रकरण भी उपयोगी हैं और वे अपना अलग-अलग महत्व रखते हैं; लेकिन जीवन के लिये इससे उपयोगी और महत्वपूर्ण दूसरा प्रकरण नहीं है। मैं पहले कह चुका हूँ कि इस पुस्तक में कोई ऐसी बात नहीं लिखी गई है जिसका मैंने स्वयं अनुभव न किया हो अथवा जिस पर मेरा विश्वास न हो।

स्वास्थ्य के बहुत से नियम हैं जिनकी आवश्यकता भी है। इनमें ब्रह्मचर्य का सब से ऊँचा स्थान है। इसमें कोई शक नहीं कि स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु तथा पौष्टिक भोजन आवश्यक हैं, लेकिन अगर हम अपने सब संचित बल का नाश कर दें तो हम कैसे स्वस्थ रह सकते हैं। यदि हम अपना उपार्जन किया हुआ सब धन व्यय कर दें तो किस तरह धन संचय कर सकते हैं? इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब तक स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य व्रत धारण न करेंगे कदापि स्वस्थ नहीं रह सकेंगे।

ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ है? इसका यही अर्थ है कि पुरुष-स्त्री का और स्त्री-पुरुष का भोग न करें। वे एक दूसरे को इस अभिप्राय से स्पर्श न करें, जिससे मन

में विकार उत्पन्न हो। इन्हें इन्द्रियों को दमन करके उस शक्ति की रक्षा करनी चाहिये जिसे ईश्वर ने हमें प्रदान किया है। हमें ऐसा करके अपनी शारिरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का विकाश करना चाहिये।

लेकिन प्रति दिन हम क्या दृश्य देखते हैं? हम यही देखते हैं कि स्त्री, पुरुष, वृद्ध और युवा सभी कामान्ध हो रहे हैं जिस के कारण वे उचित अनुचित का विचार खो बैठे हैं। हमें यहाँ तक देखने में आता है कि छोटे २ बालक और बालिकायें भी इस कुटेव में पड़ कर पागल हो रही हैं। मैं स्वयं इसके फेर में पड़ चुका हूँ। एक क्षण की तृप्ति के लिए हम अपने पूर्व-संचित बल को खो देते हैं और ज्यों ही इस भूल की छूत दूर हो जाती है, हम अपने को बुरी दशा में पाते हैं। दूसरे दिन सुबह हमें कमजोरी और सुस्ती मालूम होने लगती है और किसी काम के करने को जी नहीं चाहता। तब हम अपनी कमजोरी को दूर करने के लिए औषधियों का आश्रय लेते हैं। इसी तरह हमारे दिन व्यतीत होने लगते हैं और असमय में ही बुढ़ापा आ घेरता है फलतः हम निकम्मे और भार स्वरूप हो जाते हैं।

लेकिन प्रकृति यह नहीं चाहती। उसका नियम ठीक इसके प्रतिकूल है। ज्यों ज्यों हम बुढ़े होते जाँय, हमारी बुद्धि भी बढ़नी चाहिए और जितना ही हम अधिक दिन जीवित रहें हमें अपने अनुभव से दूसरों को लाभ पहुँचाना चाहिए। जो सच्चे ब्रह्मचारी हैं वे ऐसा ही करते हैं। वे मृत्यु से भी नहीं डरते और

न उसकी शिकायत ही करते हैं। वे प्रसन्नता पूर्वक मृत्यु की गोद में बैठते हैं और धीरता-पूर्वक परमात्मा के सम्मुख न्याय के लिए उपस्थित होते हैं। ऐसे ही स्त्री-पुरुषों का जीवन सार्थक कहा जा सकता है।

हम प्रायः इस पर विचार नहीं करते कि ब्रह्मचर्य का नाश ही प्रमाद, मत्सर्य, अभिमान, क्रोध अधीरता, आडम्बर आदि का प्रधान कारण है। यदि हमारा मन हमारे वश में नहीं है और प्रतिदिन बच्चों की तरह नादानी करता है तो हमें कोई भी पाप करने में हिचकिचाहट नहीं होती, और हम अपने किये हुए कार्यों का दुष्परिणाम भी नहीं सोच सकते।

सवाल हो सकता है कि सच्चे ब्रह्मचारी को किसने देखा है। अगर सभी ब्रह्मचारी ही बन जायें तो सृष्टि का ही लोप हो जाय। यह प्रश्न विचारणीय है किन्तु इसमें कुछ अंश तक धार्मिकता आ जाती है, अतः इस विषय को यहीं छोड़कर हम केवल साँसारिक दृष्टि से ही विचार करेंगे। हमारी समझ में ये दोनों ही प्रश्न हमारे मिथ्याभय और कमजोरी के सूचक हैं। हम ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करना चाहते इसलिए ऐसे प्रश्नों को उठा कर मुख्य विषय को हटा देना चाहते हैं। दुनिया में ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले बहुत हैं; परन्तु यदि वे हमें यों ही मिल जायें तो फिर उनका महत्व ही क्या रहे। हीरे की खोज में हजारों मनुष्य कठिन परिश्रम से ज़मीन को खोदकर खान में पहुँचते हैं तब कहीं उन्हें पर्वताकार कंकड़ों में इने गिने

हीरे मिलते हैं। अब सोचना चाहिये कि ब्रह्मचारी रूपी हीरों की खोज में हमें कितना प्रयत्न करने की आवश्यकता है ; अगर ब्रह्मचर्य पालन करने से दुनिया का नाश होता है तो उसकी चिन्ता हमें क्यों है ? इस छोटी बात के लिए हम ब्रह्मचर्य के पीछे क्यों पड़ते हैं। सृष्टि का प्रबन्ध कर्ता ईश्वर है और इसका भार उसके ऊपर है। उसने उसे बनाया है और वही उसकी रक्षा करेगा। यह सवाल उठाना कि, दूसरे ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं या नहीं, हमारा काम नहीं है। जब हम व्यवसायी, वकील या डाक्टर बनते हैं तो कभी यह ख्याल नहीं करते कि अगर दुनिया के सब लोग इसी पेशे के हो जायं तो हमारी क्या हालत होगी। ब्रह्मचारी को इसका उचित उत्तर अन्त में स्वयं मिल जायगा।

सांसारिक मनुष्य इन विचारों को कार्यरूप में कैसे ला सकते हैं ? विवाहित मनुष्य क्या करें ? बाल बच्चे-वालों को क्या करना चाहिये ? और जो अपने मन को वश में नहीं कर सकते, उन्हें क्या करना चाहिये ? इन सबका उचित उत्तर पहिले ही दिया जा चुका है। उस आदर्श को सामने रखते हुए हमें ठीक वैसा ही करना चाहिये। जब छोटे-छोटे बच्चों को अच्छरों का ज्ञान कराया जाता है तो अच्छरों की सूरत उनके सामने रखी जाती है और वे ठीक वैसी ही शक्ल बनाने की कोशिश करते हैं। यदि हम लोग ठीक ऐसे नियमानुसार ब्रह्मचर्य का पालन करते जायं, तो हमें अवश्य

लाभ होगा। यदि हम विवाहित हैं तो हमें अपने ब्रह्मचर्य का तभी नाश करना चाहिये जब संतानोत्पत्ति करना हो। यही प्रकृति का नियम है। जो इस नियम के अनुसार चौथे-पांचवें वर्ष ब्रह्मचर्य तोड़ते हैं वे कामी नहीं कहलाते और न उनका स्वास्थ्य ही बिगड़ सकता है। लेकिन अफसोस है कि हम लोगों में से बहुत कम सन्तानोत्पत्ति के लिए ऐसा करते हैं। हजारों विषय-वासना की तृप्ति के लिए ही ऐसा करते हैं। फल यह होता है कि उनकी सन्तान उनकी इच्छा के विरुद्ध होती है। काम के वेग में हम लोग प्रायः उसके फल को नहीं सोचते। इस विषय में स्त्री की अपेक्षा पुरुष ही अधिक दोषी होते हैं। वे इतना कामान्ध हो जाते हैं कि वे इतना भी नहीं सोच सकते कि स्त्री सन्तान देने योग्य है या नहीं। पाश्चात्य देशवालों ने तो इसकी हद ही कर दी है। वे भोग-विलास करते हैं और सन्तान की उत्पत्ति से बचने के लिए अनेक उपचार करते हैं। हजारों पुस्तकें इस विषय पर लिखी गई हैं। हजारों इसका व्यवसाय करते हैं और घोषणा करते हैं कि अमुक काम करने से भोग-विलास करने पर भी सन्तान उत्पत्ति का भय नहीं। हम लोग अभी इस पाप से बचे हैं लेकिन स्त्री को सन्तान के बोझ से बोझित करते हम ज़रा भी नहीं हिचकते। हम लोग यह नहीं सोचते कि हमारी सन्तान कमज़ोर, वीर्यहीन, पागल और निर्बुद्धि होगी; बल्कि ऐसी सन्तानों के लिए हम ईश्वर को धन्यवाद देते हैं और

खुशी मनाते हैं। क्या इससे भी भयावह कोई वस्तु हो सकती है ? इस विषय में हम लोग जानवरों से भी गये बीते हैं। क्योंकि जानवर तो बच्चा पैदा करने के समय ही सम्भोग करते हैं। जब तक बच्चा दूध पीता रहे माँ-बाप को इस हरकत से बचना चाहिए। लेकिन हम लोग इसके ऊपर ध्यान नहीं देते। यह रोग हम में बढ़ता जा रहा है। यदि हमारी यही हालत रही तो यह शीघ्र ही हमें कत्र के नजदीक पहुँचा देगा। विवाहित मनुष्य को विवाह का महत्व समझना चाहिए और सन्तान उत्पत्ति के लिये ही सम्भोग करना चाहिये। क्षणिक आनन्द के लिये कभी भी सम्भोग नहीं करना चाहिए। किन्तु वर्तमान अवस्था में ऐसा करना कठिन है; क्योंकि हमारा भोजन, रहन-सहन, बातचीत और आस-पास के दृश्य ऐसे हो गये हैं जो सदैव हमारी काम-वासना को उत्तेजित करते रहते हैं और आखिर में हमारे लिए विष का काम करते हैं। बहुतों को इसमें सन्देह होता है कि जब हमारी यह हालत है तब हम इससे कैसे छुटकारा पा सकते हैं। यह पुस्तक उन लोगों के लिए नहीं है जिनके मन में इस प्रकार के संदेह रहते हों; बल्कि उनके लिए है जो सच्चे हृदय से इसका अभ्यास करने लग जायँ। जो लोग अपनी वर्तमान अवस्था में ही संतुष्ट हैं वे तो इसे पढ़कर झुँझला उठेंगे। लेकिन मेरा विश्वास है कि जो लोग अपनी वर्तमान परिस्थिति से घबड़ा गये हैं उनके लिए यह लाभदायक सिद्ध होगी।

इन बातों से हम समझ सकते हैं कि जो अविवाहित हैं उन्हें

अभी विवाह नहीं करना चाहिए और यदि किये बिना काम न चले तो जहाँ तक सम्भव हो देर से विवाह करें। युवकों को तो प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए कि पच्चीस-तीस वर्ष तक व्याह नहीं करेंगे। ऐसा करने से जो शारीरिक लाभ उन्हें होगा उसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकरण के पढ़ने वाले माता-पिता से मेरी प्रार्थना है कि वे अपनी सन्तान की शादी बचपन में न करें। उन्हें उनके भविष्य का भी ख्याल रखना चाहिए। उन्हें समाज एवं प्रतिष्ठा के लिए व्याह करने की इच्छा छोड़ देनी चाहिए। यदि वे उनके सच्चे हितैषी हैं तो उन्हें उनके शारीरिक तथा मानसिक बल को बढ़ाने की ओर ध्यान देना चाहिए। इससे बढ़कर और बुरी बात क्या हो सकती है कि बचपन में ही उनका हम व्याह कर उनके ऊपर एक बोझ लाद देते हैं और उनका स्वास्थ्य खराब कर उनका भविष्य बिगाड़ देते हैं।

स्वास्थ्य का नियम बतलाता है कि जिस स्त्री का पुरुष मर गया हो या जिस पुरुष की स्त्री मर गई हो वह दोबारा व्याह न करे। कुछ डाक्टरों की राय है कि युवा स्त्री-पुरुष को वीर्य-पात का अवसर मिलना चाहिए और कितने ही इसके विपरीत राय देते हैं। अब अगर हम यह सोचकर कि एक पक्ष हमारा समर्थन करता है—अपने वीर्य का नाश करें, यह अनुचित है। मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर निःसंकोच कहूँगा कि वीर्य-पात स्वास्थ्य के लिए बड़ा ही हानिकारक है और ऐसा करना निरी

मूर्खता है। बहुत दिनों का संचित किया हुआ वीर्य यदि एक बार भी नष्ट हो जाता है तो उसकी पूर्ति करते कुछ दिन लग जाते हैं और फिर भी पूरा नहीं हो पाता। टूटा हुआ शीशा जोड़ा जा सकता है और उससे काम भी लिया जा सकता है लेकिन फिर भी वह टूटा हुआ ही कहा जायगा।

पहिले बतलाया जा चुका है कि वीर्य-रक्षा के लिए साफ हवा, साफ पानी, पुष्टिकर भोजन, साधारण रहन-सहन और स्वच्छ विचारों की अति आवश्यकता है। आचरण और आरोग्यता में इतनी घनिष्टता है कि एक सदाचारी मनुष्य ही नीरोग हो सकता है। वह मनुष्य जो अपने किये हुए दुष्कर्मों को भूलकर सदाचारी होने की कोशिश करता है, वह अपने प्रयास में शीघ्र ही सफली-भूत होता है। जिन्होंने थोड़े दिनों के लिये भी ब्रह्मचर्य धारण किया है उन्हें अनुभव हुआ है कि इस थोड़े समय में ही उनके शारीरिक एवं मानसिक बल का कितना विकास हुआ है। जिन्हें इस प्रकार के अनुभव हो गये हैं वे किसी भी हालत में अपने संचित वीर्य-कोष को घटाना नहीं चाहेंगे। मैं ब्रह्मचर्य के महत्त्व को जानते हुए भी स्वयं उसके नियमों का उलंघन करके उसके दुष्परिणाम को भी भोग चुका हूँ। जब मैं अपनी उस अवस्था की याद करता हूँ तो लज्जा से मेरा सिर झुक जाता है। लेकिन अपने पिछले कुकर्मों के फल से मुझे अच्छी शिक्षा मिली है और अब वर्तमान एवं भविष्य में अपने खजाने को संचित करने का बराबर प्रयत्न कर रहा हूँ और उससे बहुत लाभ उठा रहा हूँ।

मेरा भी व्याह बचपन ही में हो गया था और कम उम्र में ही मैं कुछ बच्चों का पिता बन बैठा था, लेकिन जब मैंने अपनी परिस्थिति पर विचार किया तो अपने को बहुत ही भीषण एवं पतित अवस्था में पाया। यदि पाठकों में से एक ने भी इस पुस्तक से लाभ उठाया तो मैं समझूँगा कि इस पुस्तक के लिखने का मुझे उचित पुरस्कार मिल गया है। बहुत से लोगों का यह कहना है और मेरा भी विश्वास है कि मेरा मस्तिष्क कमजोर नहीं है और मेरे अन्दर पूरा उत्साह है। कुछ लोग तो मुझे हठी तक कहने में संकोच नहीं करते। मेरा मस्तिष्क और शरीर दोनों नीरोग हैं; लेकिन जब मैं अपने मित्रों के साथ अपनी तुलना करता हूँ तो अपने को पूर्ण स्वस्थ कह सकता हूँ। अब बीस वर्ष तक विषय भोग के पश्चात् मैं अभी इतना स्वस्थ हूँ, यदि उन बीस वर्षों में भी मैं विषय-वासना से वंचित रहता तो आज कितना स्वस्थ होता। यह मेरा पूर्ण विश्वास है कि यदि उन दिनों मैंने पवित्र-जीवन व्यतीत किया होता तो इस समय से हजार गुना अधिक स्वस्थ और उत्साही होता और इस तरह अपने भाइयों को, अपने को और देश को कुछ अधिक लाभ पहुँचा सकता। जब मुझ जैसे साधारण व्यक्ति की यह हालत है तो जो मनुष्य अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करेगा उसका मस्तिष्क, शरीर और उसके अवयवों का कितना विकास होगा।

जब ब्रह्मचर्य के नियम इतने कठिन हैं तो उन लोगों के विषय में क्या कहा जा सकता है जो सदैव स्त्री-संभोग करने के

अपराधी हैं। वेश्या तथा पराई स्त्री पर कलुषित विचार रखने से बहुत बुरा परिणाम होता है। इसका विचार आरोग्य सम्बन्धी बातों के साथ नहीं किया जा सकता। यह तो धर्म और नीति का विषय है। यहाँ इतना ही कहना उचित होगा कि वेश्या-गमन एवं पर-स्त्री सम्भोग के कारण हजारों मनुष्य गर्मी, सुजाक तथा ऐसे ही अन्य रोंगों के शिकार होते देखे जाते हैं। प्रकृति ऐसे स्त्री-पुरुषों को शीघ्र दण्ड देती है। उनके पाप फूट निकलते हैं और उन्हें डाक्टर का दरवाजा खट खटाना पड़ता है। जिस स्थान पर यह बातें नहीं होतीं वहाँ ५० प्रतिशत वैद्य और डाक्टर बेकार हो जाते हैं। मनुष्य जाति को इन बीमारियों में फंसा देख डाक्टर लोग यह कहने को बाध्य होते हैं कि यदि पर-स्त्री-गमन का यही सिलसिला जारी रहा तो औषधियों के सेवन करने पर भी संतान-नाश की सम्भावना बनी रहेगी। इन रोंगों की दवा बहुत विषैली होती है। अतः रोग दूर हो जाने पर भी उसका प्रभाव बहुत बुरा पड़ता है। ये रोग पीढ़ी दर पीढ़ी होते चले जाते हैं।

इस विषय को समाप्त करते हुए मैं विवाहित स्त्री-पुरुषों को संक्षेप में ब्रह्मचर्य पालन करने के नियमों को बतला देना चाहता हूँ। भोजन, हवा और पानी के नियमों का पालन करने ही से ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं हो सकती। पुरुष को स्त्री के साथ एकान्त में नहीं सोना चाहिए। स्त्री-पुरुष को विषय-भोग ही के लिए एकान्त-वास की आवश्यकता होती है। उन्हें रात में अलग-

अलग सोना चाहिए। दिन में अच्छे विचारों और कामों में लगे रहना चाहिए। उन्हें ऐसी किताबें पढ़नी चाहिए जो उनके अन्दर अच्छे विचार उत्पन्न करें। उन्हें महान पुरुषों का जीवन चरित्र पढ़ कर शिक्षा लेनी चाहिए। उन्हें सदा स्मरण रखना चाहिए कि स्त्री-सम्भोग ही सब रोगों की जड़ है। जब विषय-इच्छा उत्पन्न हो तब ठंडे पानी से स्नान कर लेना चाहिए इससे शरीर के अन्दर की महाग्नि शान्त पड़ जायगी और इसका परिणाम स्त्री-पुरुषों के लिए उपकारी होगा। यह काम कठिन है परन्तु कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए ही तो हम पैदा हुए हैं। जो लोग इन कठिनाइयों का सामना करने से पीछे हटेंगे वे कभी नीरोग नहीं रह सकते।

दूसरा भाग

कुछ साधारण उपचार

वायु-चिकित्सा

अब तक हम लोग स्वास्थ्य प्राप्ति और उसकी रक्षा के विषय में विचार किए हैं। यदि सब स्त्री-पुरुष स्वास्थ्य के नियमों का पालन करें और स्वस्थ रहने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करें, तो आगे लिखे जानेवाले प्रकरणों की आवश्यकता ही न हो। क्योंकि ऐसे व्यक्तियों को शारीरिक या मानसिक व्याधियाँ सता ही नहीं सकतीं। किन्तु ऐसे स्त्री-पुरुष बहुत कम मिलते हैं। आजकल ऐसा कौन है जिसको किसी प्रकार का रोग न हो। स्वास्थ्य सम्बन्धी जितने नियम बतलाये जा चुके हैं उनका जितना ही हम पालन करेंगे उतना ही नीरोग रहेंगे। लेकिन जब हम रोग ग्रसित हो जायें तो उसका उचित उपचार करना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। आगे के प्रकरणों में यही बतलाया जायगा कि डाक्टरों की सहायता बिना उन रोगों का उपचार कैसे किया जा सकता है।

स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ वायु जितनी आवश्यक है, रोगों के उपचार के लिए भी उसकी वैसी ही जरूरत है। उदाहरण के लिये उस मनुष्य को लीजिये जिसे गठिया का रोग हो। यदि उसे गर्म हवा की भाप दी जाय तो उसको पसीना आ जायगा और उसके जोड़ खुल जायेंगे। इस किस्म की वायु-चिकित्सा

को “टर्किश बाथ” कहते हैं। यदि किसी मनुष्य को अधिक ज्वर हो गया हो और बुखार की गर्मी से उसका शरीर जल रहा हो तब यदि उसके सभी कपड़े उतार कर उसे खुली हवा में सुला दिया जाय तो उसके बुखार में शीघ्र कमी हो जाती है और उसे कुछ आराम मिलता है। यदि उसे ठंड मालूम हो और एक कम्बल ओढ़ा दें तो उसके बदन से पसीना निकलने लगता है और बुखार कम हो जाता है। लेकिन हम लोग साधारणतः ऐसी दशा में इसके प्रतिकूल काम करते हैं। रोगी यदि खुली हवा में रहना चाहता है तो भी हम उसके कमरे के तमाम दरवाजे और खिड़कियां बन्द कर देते हैं और उसका सारा शरीर यहाँ तक कि सिर और कान भी ढक देते हैं। फल यह होता है कि रोगी घबड़ाने लगता है और कमजोर पड़ जाता है। यदि गर्मी के कारण बुखार आया हो तो उपरोक्त वायु का उपचार बहुत ही लाभदायक होता है। इसमें डरने की कोई जरूरत नहीं। हां, इसका ख्याल रखना चाहिए कि रोगी को अधिक ठंड न लगने पावे। यदि वह बिल्कुल नंगा न रह सके तो उसे कपड़े से ढककर बाहर खुली हवा में रखना चाहिए।

जीर्ण ज्वर और ऐसी ही अन्य बीमारियों के लिए आब-हवा बदलना एक अकसीर दवा है। साधारणतः जो लोग आब-हवा बदलते हैं, वे एक प्रकार का वायु-उपचार ही करते हैं। हम लोग बहुधा अपने घर को इस भाव से भी बदलते हैं कि भूत-प्रेत के वास से हमारा घर रोगी हो गया है। यह हम लोगों का भ्रम है;

क्योंकि भूत-प्रेत तो घर की दूषित वायु ही हुआ करती है। वास स्थान बदल देने से हवा बदल जाती है और फलतः रोग छूट जाता है। वास्तव में स्वास्थ्य और वायु से इतनी घनिष्टता है कि हवा का बदलना बुरा अथवा भला फल लाये बिना नहीं रहता। हवा बदलने के लिये धनी लोग तो दूर २ जा सकते हैं लेकिन निर्धन लोग भी एक गांव से दूसरे गांव में जा सकते हैं और यदि यह भी न हो सके तो एक घर को छोड़कर दूसरे घर में तो जा ही सकते हैं। यदि रोगी को उसके कमरे से दूसरे कमरे में कर दिया जाय तो भी बहुत कुछ लाभ हो सकता है। हाँ, इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि नये बदले हुए स्थान की वायु स्वच्छ हो। इसी तरह उदाहरण के लिए जो रोग नम हवा के कारण उत्पन्न हुआ है यदि स्थान बदलकर हम उससे भी नम हवा में जाते हैं तो वह रोग कदापि नहीं छूट सकता। कभी २ हवा के परिवर्तन से कुछ लाभ नहीं होता। इसका मुख्य कारण यही है कि हम बदले हुए स्थान पर जाकर पूरी सावधानी नहीं रखते। इस प्रकरण में वायु के साधारण उपचार ही बत लाए गए हैं। लेकिन इस पुस्तक के पहले भाग के वायु प्रकरण में स्वच्छ वायु का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका पूरा विवेचन किया गया है। इसलिए मैं अपने पाठकों को दोनों प्रकरणों को साथ २ पढ़ने की सलाह दूंगा।

जल-चिकित्सा

चूँकि हवा एक ऐसी वस्तु है जिसे हम देख नहीं सकते । इस-लिए उसके किये हुए अद्भुत कामों को भी हम नहीं समझ पाते । लेकिन जल और उसकी चिकित्सा के लाभ को हम अच्छी तरह समझ सकते हैं । पानी के भाप-चिकित्सा को सभी जानते हैं । बुखार में अक्सर हम लोग इसका उपचार करते हैं । असह्य सिर दर्द में भी इसके उपचार से बहुत लाभ होता है । गठिया के दर्द में पहले पानी का भाप देकर ठंडे पानी से स्नान कराने से बहुत कुछ लाभ होता है । शरीर के फोड़े-फुन्सी जो केवल मरहम पट्टी से नहीं आराम होते ठंडे पानी के प्रयोग से आराम हो जाते हैं ।

थकावट को दूर करने के लिए यदि पहले भाप लेकर ठंडे पानी से स्नान किया जाय तो थकान दूर हो जाती है । ऐसे ही यदि नींद न आती हो तो पहले भाप लेकर ठण्डे पानी से स्नान कर यदि खुली हवा में आदमी सोवे तो शीघ्र नींद आ जाती है ।

जहाँ पर भाप काम में लाने को कहा गया है, वहाँ हम गरम पानी का प्रयोग कर सकते हैं । यदि पेट में दर्द हो तो गर्म पानी को बोतल में भर कर उसके ऊपर पतला कपड़ा लपेट कर यदि पेट पर रखा जाय तो शीघ्र दर्द आराम हो जाता है । जब कभी क़ै (उलटी) करने की आवश्यकता हो तो यदि पेट भर गरम पानी पी लिया जाय तो क़ै आसानी से हो जाती है । जिन्हें

कब्ज का रोग है वे यदि सवेरे उठकर दांतुन करने के पश्चात् गरम पानी पी लें तो दस्त खुलकर आती है। सर गार्डन स्प्रिंग जो कभी केप के प्रधान थे, बहुत स्वस्थ थे। सोने के पहले या सोकर उठने के बाद वे गरम पानी पी लिया करते थे। कितने ही लोगों की ऐसी आदत है कि सवेरे गरम चाय पीने के बाद ही उन्हें दस्त आती है जिससे वे इस भ्रम में रहते हैं कि चाय की वजह से ही उन्हें दस्त आती है। लेकिन चाय से हानि होती है और दस्त लाने का मुख्य कारण चाय का गरम पानी है।

भाप लेने के लिये एक प्रकार का चौखटा होता है लेकिन उसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। बेंत की बुनी कुर्सी के नीचे स्परिट या किरासन तेल का चूल्हा या जलती लकड़ी या कोयले की छोटी अंगीठी रख ली जाय और उसके ऊपर एक छोटी सी पतीली पानी से भर कर और ढक्कन से ढक कर रख दी जाय, फिर कुर्सी के ऊपर एक कम्बल इस तरह रखे जिससे रोगी को आग की आंच न लगे। तब रोगी को उस कुर्सी पर बैठा दिया जाय और उसे एक कम्बल ओढ़ा दिया जाय इसके बाद पतीली का ढक्कन हटा दिया जाय ताकि जो भाप पतीली से उठे रोगी को लगे। हम लोग प्रायः रोगी के सिर को कपड़े से ढके रहते हैं यह हानिकर है। भाप की गर्मी रोगी के बदन में होकर उसके सिर तक जाती है जिससे उसके शरीर से पसीना आने लगता है। यदि रोगी बहुत देर तक बैठ न सके तो उसे रस्सी या लोहे के पंलग पर लेटा कर भाप दे सकते हैं।

भाप देते समय इस बात की सावधानी रखनी चाहिये कि कहीं रोगी या उसका कम्बल जल न जाय । साथ ही उसके स्वास्थ्य का भी काफ़ी ध्यान रखना चाहिये क्योंकि भाप देने में जितना लाभ है उतनी ही हानि भी हो सकती है । भाप लेने के बाद रोगी को कुछ विशेष कमजोरी मालूम होती है । लेकिन यह कमजोरी थोड़ी ही देर रहती है । प्रति दिन भाप नहीं लेना चाहिए ऐसा करने से भाप लेने की बुरी टेव पड़ जाती है और कमजोरी बढ़ने लगती है । शरीर के किसी भी अवयव विशेष में भाप दिया जा सकता है । सिर दर्द में सारे शरीर में भाप देने की आवश्यकता नहीं है । सिर के ऊपर हल्का कपड़ा बांधकर किसी तंग मुंह वाले बर्तन से नाक द्वारा भाप लेना चाहिये ताकि उसका प्रभाव सिर तक पड़े । यदि नथुने बन्द हो गये हों तो ऐसा करने से वे भी खुल जाते हैं । इसी तरह यदि किसी विशेष अंग में सूजन आ गई हो तो केवल उतने ही हिस्से पर भाप का प्रयोग करना चाहिये ।

गरम पानी और भाप से जो लाभ होते हैं उसे प्रायः सभी जानते हैं, लेकिन ठंडे पानी के लाभ को बहुत कम लोग समझते हैं यद्यपि गरम पानी की अपेक्षा ठंडा पानी अधिक लाभ पहुँचाता है और इसका प्रयोग कमजोर-से-कमजोर आदमी पर भी किया जा सकता है । ताप ज्वर, चेचक, या अन्य चर्मरोग में ठंडे पानी में कपड़ा भिगोकर लपेटे रहने से बहुधा आश्चर्य जनक लाभ पहुँचता है । कोई भी मनुष्य इसकी परीक्षा कर सकता

है इससे कुछ हानि भी नहीं होती। उन्माद तथा सन्निपात के रोगियों के सिर पर बर्फ में भिगोया हुआ कपड़ा रखने से बहुत कुछ शान्ति मिलती है। जिसे दस्त न आती हो वह यदि बर्फ में कपड़ा भिगोकर अपने पेट पर बांधे तो दस्त आ सकती है। यदि शरीर के किसी अंग से खून बहना बन्द न होता हो तो बर्फ के पानी में कपड़ा भिगोकर बांधने से खून बन्द हो जाता है। नाक से खून (नकसीर) आता हो तो सिर पर ठंडे पानी की धार गिराने से खून का आना बन्द हो जाता है। नाक में किसी तरह की बीमारी अथवा सिर दर्द क्यों न हो दोनों समय नाक से पानी खींचने से अच्छा हो जाता है। नाक का एक छेद बन्द कर दूसरे से पानी चढ़ाया जाय। फिर बन्द किये छेद के द्वारा बाहर निकाल दिया जाय अथवा दोनों छिद्रों से पानी ऊपर चढ़ाया जाय और मुँह के द्वारा निकाल लिया जाय। यदि नाक साफ हो तो ऐसा करते समय पानी मुँह से पेट के अन्दर चला जाय तो भी कोई हानि नहीं होती। नाक को साफ रखने का भी यह एक अच्छा तरीका है। जिनसे नाक द्वारा पानी ऊपर नहीं चढ़ाया जा सकता वे पिचकारी का प्रयोग कर सकते हैं; लेकिन दो चार बार कोशिश करने से वे भी नाक से ही पानी खींच सकते हैं। सब को इसका अभ्यास करना चाहिए क्योंकि यह एक सरल उपाय है और इससे सिर दर्द, नाक की मैल और बदबू बन्द हो जाती है। बहुत से लोग गुदा के द्वारा पेट में पानी चढ़ाते डरते हैं और कितने ही यह

सोचते हैं कि ऐसा करने से शरीर निर्वल हो जाता है, लेकिन यह उनका भ्रम है। शीघ्र दस्त लाने के लिए गुदा द्वारा पिचकारी लेने के सिवाय और कोई दूसरा उत्तम इलाज नहीं है। अनेक रोगों में जब कोई दूसरा इलाज काम नहीं करता तब यही लाभदायक सिद्ध होता है। इस क्रिया से शरीर का मल साफ हो जाता है और नया ज़हर नहीं जमता। जो लोग वात रोग, वादी, मेदे की खराबी इत्यादि से बीमार हों उन्हें गुदा द्वारा एक सेर पानी की पिचकारी लेनी चाहिए। इससे शीघ्र दस्त हो जायगा। इस विषय में एक लेखक लिखता है कि वह बड़हज़मी के चंगुल में पड़ गया था। उसने अनेक दवाइयाँ कीं, किन्तु उनसे कोई लाभ न हुआ बल्कि शरीर कमज़ोर होकर पीला पड़ गया। अन्त में उसने पिचकारी लेना प्रारम्भ किया। इस प्रयोग के कुछ ही दिन बाद उसे खूब भूख लगने लगी और वह शीघ्र ही स्वस्थ हो गया। जिस बीमारी से शरीर पीला पड़ जाता है वह भी पिचकारी द्वारा अच्छी की जा सकती है अगर अधिक पिचकारी लेने की आवश्यकता पड़े तो ठंडे पानी की लेनी चाहिये। गर्म पानी की पिचकारी से निर्वल होने की सम्भावना रहती है। लेकिन यह दोष पिचकारी का नहीं है।

जर्मन डाक्टर लुई कूने की यह राय है कि जल-चिकित्सा सब से उत्तम है। इस विषय पर लिखी हुई उसकी पुस्तकों की इतनी ख्याति बढ़ गई है कि दुनिया की प्रायः सभी भाषाओं में उनके अनुवाद हो गये हैं। हिन्दी भाषा में भी उनके अनुवाद

हुये हैं। लूईकूने के सिद्धान्त के अनुसार सब रोगों की जड़ मेदा है। जब इसमें अधिक गर्मी रहती है तो शरीर के बाहरी भाग में फोड़े, फुन्सी या दूसरे चर्म रोग हो जाते हैं। लूई कूने के पहिले के लेखकों ने भी जल-चिकित्सा पर अपनी राय दी है। “पानी का उपचार” नामक पुस्तक लूईकूने की पुस्तकों से बहुत पहले लिखी जा चुकी थी। लेकिन लूईकूने से पहिले किसी ने भी यह नहीं बताया कि रोगों की जड़ मेदा है। हमें मानना पड़ेगा कि लूईकूने का सिद्धान्त बिलकुल ठीक है। मि० ट्रीटन जो डरबन के मजिस्ट्रेट थे धनुर्वात से बिलकुल अपंग हो गये थे। उन्होंने अनेक औषधियों का सेवन किया किन्तु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। अन्त में लूईकूने के इलाज से वे अच्छे हो गये! वह अधिक समय तक डरबन में सुख से रहे और सदा लोगों को लूईकूने के इलाज द्वारा लाभ उठाने की राय देते रहे। लूईकूने की पद्धति द्वारा इलाज करने वाली संस्था नैटाल में स्वीट वाटर्स नामक स्टेशन के समीप अब भी है।

डाक्टर लूईकूने लिखते हैं कि मेदा की गम पानी से मिटती है। इसके लिये उसने ठंडे पानी से स्नान करना बतलाया है ताकि मेदे के आस-पास के भाग ठंडे रह सकें। आसानी से स्नान करने के लिये उसने एक प्रकार का टीन का टब बनाया है, लेकिन इसके बिना भी हमारा काम चल सकता है। पुरुष या स्त्री के कद के अनुसार ३६ इंच या उससे छोटा-बड़ा टीन का

टब कुछ लम्बाई लिये हुए गोल आकार का बाजार में बिकता है। टब का तीन चौथाई हिस्सा ठंडे पानी से भर कर उसमें रोगी को इस ढंग से बैठाना चाहिये कि उसका पैर और धड़ पानी से बाहर रहे। नाभी से लेकर जांघ तक का हिस्सा पानी के भीतर रहे। सब से अच्छा तरीका यह कि पैर किसी लकड़ी के तख्ते पर रख दिया जाय। रोगी को टब में नंगा बिठाना चाहिये। ठण्डक महसूस होने पर पैर और धड़ कम्बल से ढक दिये जायं। ऐसी हालत में रोगी को कुर्ता इत्यादि भी पहनाया जा सकता है। लेकिन ये सब चीजें पानी के बाहर रहनी चाहिये। स्नान की जगह ऐसी होनी चाहिये जहाँ धूप और हवा अच्छी तरह पहुँच सके। रोगी को पानी के भीतर अपना पेट किसी खुरखुरे कपड़े से मलना चाहिये। यदि रोगी स्वयं ऐसा न कर सके तो उसे किसी दूसरे से मलवाना चाहिये।

यह स्नान पाँच से तीस मिनट तक या इससे भी अधिक देर तक किया जा सकता है। इस स्नान का प्रभाव शीघ्र पड़ता है। बादी के रोगी को तो शीघ्र हवा खुलने लगती है, और डकार आने लगती है। दस्त साफ होने लगती है। नींद न आनेवालों को नींद आने लगती है। अधिक सोने वालों के नींद में कमी आ जाती है और उनमें स्फूर्ति आ जाती है। बदहज्मी से ही अतिसार तथा कोष्ठ-वद्ध के रोग होते हैं। इस बीमारी के लिए कूने का स्नान अति उत्तम है। पुरानी बवासीर इस स्नान से तथा खान-पान के परहेज से जाती रहती है। जो लोग अधिक

थूकते हैं उनके लिए भी यह स्नान लाभदायक होता है। इस स्नान से कमजोर भी बलवान हो जाते हैं। बहुतेरों की गठिया तक अच्छा हो जाता है। सिर के दर्द में यदि यह स्नान किया जाय तो दर्द हल्का पड़ जाता है। इस स्नान से गर्भवती स्त्री की प्रसव-काल की पीड़ा कम हो जाती है। बालक, जवान, बुढ़े, स्त्री-पुरुष सबके लिए यह स्नान लाभप्रद है।

एक और उपचार है जिसे “गीली चादर का उपचार” कहते हैं। इससे भी अनेक रोग दूर हो जाते हैं। एक मेज या कुर्सी को खुली हवा में रख दो। उस पर तीन-चार कम्बल बिछा दो। उन कम्बलों पर तीन चादरें ठंडे पानी में भिगो कर बिछा दो। इसके बाद रोगी को नंगे उस पर लेटा दो। रोगी का हाथ बगल में हो। इसके बाद एक २ करके सभी चादरें और कम्बलों रोगी के बदन में लपेट कर उसे अच्छी तरह से ढक दो। यदि धूप हो तो रोगी के मुंह पर एक गीला कपड़ा या रुसाल रख दो। लेकिन नाक खुली रहनी चाहिए। पहले तो रोगी काँप उठेगा, बाद में उसको गर्मी लग कर पसीना निकलेगा। यह उपचार पाँच मिनट तक करना चाहिए। फिर रोगी के बदन से कपड़े हटा कर ठंडे पानी से स्नान करा दो। बुखार, शीतला और चर्म रोग इससे दूर हो जाते हैं। यह निश्चय है कि यदि स्वास्थ्य के नियमों का भलीभाँति पालन किया गया, तो जल-चिकित्सा से रोगी तुरन्त अच्छा हो सकता है।

मिट्टी का उपचार

अब मैं मिट्टी के उपचार के विषय में कुछ बतलाऊंगा। इसका उपचार कभी २ जल-चिकित्सा से भी बढ़कर आश्चर्यजनक चमत्कार दिखलाने में उपयुक्त सिद्ध हुआ है। मिट्टी में इतनी शक्ति वर्तमान है कि यह सुनकर हमें चकित हो जाना पड़ता है क्योंकि हम लोगों का स्थूल शरीर भी इसी मिट्टी से बना है। वास्तव में इसका प्रयोग हम पवित्रता की दृष्टि से करते हैं। बुरे गन्ध को मिटाने के लिए हम उस स्थान को मिट्टी से पोतते हैं। हम सड़ी-गली वस्तुओं को मिट्टी से ढक देते हैं ताकि उसकी बुरी गन्ध हवा को दूषित न करे। हम अपने हाथ और गुप्त इन्द्रियों को भी इससे धोते हैं। योगी इसे अपने शरीर में मलते हैं। कुछ लोग फोड़े फुन्सियों को आराम करने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। शव को मिट्टी के अन्दर गाड़ देते हैं ताकि सड़ने पर उसकी बुरी गन्ध वायुमण्डल को दूषित न कर सके। इन सब क्रियाओं से यही साबित होता है कि मिट्टी के अन्दर स्वच्छता और आरोग्य प्रदान करने की शक्ति है।

जिस तरह डा० लूईकूने ने जल-चिकित्सा के विषय में अनेक उपयोगी बातें बतलायी हैं उसी तरह एक जूस्ट नामक जर्मन डाक्टर ने मिट्टी के उपचार के विषय में अनेक लाभ अनुभव कर के इसकी उपयोगिता का वर्णन किया है। उसने यहाँ तक बतलाया है कि बहुत से असाध्य रोग इसके द्वारा आराम किये

जा सकते हैं। वह एक घटना का इस प्रकार वर्णन करता है कि किसी आदमी को साँप ने काट लिया। सब लोगों ने उसको मरा हुआ समझ कर उसकी औषधि करनी छोड़ दी। लेकिन मैंने उसे थोड़ी देर तक मिट्टी से ढक कर उसे जीवित कर दिया। इस घटना की सत्यता में कुछ सन्देह नहीं किया जा सकता। सभी जानते हैं कि जमीन में गाड़ने से अत्यधिक गर्मी उत्पन्न होती है। यद्यपि मैं यह नहीं कह सकता कि मिट्टी का प्रभाव उस पर किस तरह पड़ा, लेकिन मुझे मानना पड़ता है कि मिट्टी के अन्दर ज़हर खींच लेने की शक्ति है। हाँ, पर हो सकता है कि हरेक साँप का काटा हुआ इस प्रकार आराम न हो; फिर भी जब किसी को साँप काटे तो यह उपचार करना चाहिए। मैं अपने निजी अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूँ कि बिच्छू या वैसे ही विषैले जीवों के काटने पर गीली मिट्टी का लेप बहुत लाभदायक होता है।

मैंने स्वयं इसका उपचार निम्नांकित रोगों में किया है। पेट, सिर, और आंख के दर्द एवं चोट की सूजन मिट्टी की पुलटिस से दो तीन दिन में आराम हो जाती है। मैं पहले एनोज़ के 'फ्रूट-साल्ट' के बिना कभी नीरोग नहीं रह सकता था लेकिन सन् १९०४ ई० में जब मुझे मिट्टी की उपयोगिता मालूम हुई तब मैंने उसका आश्रय लिया तब से आज तक कोई ऐसा अवसर नहीं आया जबकि मुझे फ्रूट साल्ट का प्रयोग करना पड़ा हो। कड़े-से-कड़े ज्वर में इसकी पुलटिस सिर पर और

पेड़ में बाँधने से एक दो घंटे में ज्वर कम हो जाता है। चर्म रोग जैसे खुजली, दाद और फोड़े फुन्सी इसके उपचार से शीघ्र आराम होते हैं। जले हुए स्थान पर इसका लेप करने से जलन कम हो जाती है और उस पर फफोले नहीं उठते। गर्मी का भी रोग इससे अच्छा हो सकता है। पाले से जब हाथ पैर लाल पड़ जाते हैं और सूज जाते हैं तब इसका प्रयोग बहुत लाभ पहुँचाता है। हड्डियों के जोड़ का दर्द भी इससे आराम होता है। इन अनुभवों से मैं इसी परिणाम पर पहुँचता हूँ कि इसका उपचार घरेलू रोगों में बहुत ही लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

यह बात अवश्य है कि सभी प्रकार की मिट्टी एक-सी उपयोगी और गुणकारी नहीं हुआ करती। ज़मीन खोदकर जो सुर्ख मिट्टी निकाली जाती है वह बहुत उपयोगी होती है। यह अधिक चिकनी नहीं होती। बालू मिली चिकनी मिट्टी सबसे उत्तम है। जो मिट्टी प्रयोग में लाई जाय उसमें गोबर या दूसरी कोई खराब वस्तु न मिली हो। पहले मिट्टी को बारीक पीस कर चलनी से छान लेना चाहिए तब उसे ठंडे पानी में मिलाकर काम में लाना चाहिए। मिट्टी को अच्छी तरह आटे की तरह गूंध लेना चाहिए और तब उसे स्वच्छ कपड़े में रखकर पुलटिस बना लेना चाहिए। प्रयोग के बाद जब मिट्टी सूखने लगे तो पुलटिस को हटा देना चाहिए। आम तौर पर एक पुलटिस दो से तीन घण्टे तक ठहर सकती है। एक बार प्रयोग की हुई मिट्टी दोबारा काम में नहीं लानी चाहिए। हाँ, उस कपड़े को खूब साफ करके फिर काम में

ला सकते हैं। अगर पुलटिस पेट पर रखनी हो तो पहले उसे गरम कपड़े से ढक देना चाहिए। तब उस पर मिट्टी चढ़ाना चाहिए। हरेक आदमी को चाहिए कि एक टीन स्वच्छ मिट्टी अपने पास रखे ताकि आवश्यकता पड़ने पर उसका प्रयोग आसानी से कर सके। ऐसा न हो कि किसी को बिच्छू काट दे और तब मिट्टी की तलाश की जाय। ऐसा करने से विष बदन में फैल जायगी। बिच्छू इत्यादि डंक मारनेवाले जानवरों के काटने पर जितना जल्दी मिट्टी का प्रयोग किया जायगा उतना ही शीघ्र लाभ होगा।

ज्वर और उसका इलाज

अब हम कुछ खास रोग और उनकी औषधियों के विषय में विचार करेंगे और सब से पहले ज्वर के विषय में। क्योंकि इस बीमारी का हमारे यहाँ भयंकर प्रकोप रहता है। हमारे शरीर में हरारत के कारण जब ताप बढ़ जाती है तब हम उसे ज्वर या बुखार कहते हैं। अंग्रेज डाक्टरों के मतानुसार ज्वर कई प्रकार का होता है और वे उनकी औषधि भी अलग-अलग करते हैं। लेकिन इस प्रकरण में दिये हुये उपचार और औषधि के प्रयोग से हम लोग सभी तरह के ज्वर को आराम कर सकते हैं। मैंने हर किस्म के ज्वर में यहां तक कि प्लेग में भी एक ही तरह का उपचार किया है जिसका फल संतोषजनक हुआ है। सन् १९०४ ई० में दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों में बड़े जोरों का प्लेग फैला था। इसका प्रकोप इतना भयंकर हो गया था कि चौबीस घण्टे के अन्दर तेईस बीमार व्यक्तियों में इक्कीस मरे और शेष दो अस्पताल पहुँचाये गये जिनमें से एक अस्पताल में ही मर गया किन्तु दूसरा जिसके ऊपर मिट्टी की पुलटिस का प्रयोग किया गया था बच गया। हाँ इतना अवश्य है कि इस घटना से हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते कि वह मिट्टी ही के उपचार से बचा; लेकिन हर हालत में यह कहा जा सकता है कि इससे उसे कुछ हानि नहीं हुई। फेफड़े में सूजन हो जाने के कारण वे दोनों ज्वर से बेहोश थे। जिसके ऊपर मिट्टी का प्रयोग

किया गया था उसकी अवस्था ऐसी खराब हो रही थी कि उसके मुँह से खून आ रहा था। मुझे बाद में डाक्टर से मालूम हुआ कि उस रोगी को बहुत कम खुराक दी जाती थी। वह भी केवल दूध की।

ज्वर अधिकतर मेदे की खराबी से उत्पन्न होता है। अतः सबसे पहले रोगी को उपवास करना चाहिए। यह हम लोगों का भ्रम है कि उपवास से रोगी और भी कमजोर हो जायगा। हम लोग पहले ही पढ़ चुके हैं कि भोजन का वही भाग हमारे लिए लाभ प्रद होता है जिससे खून बने। शेष भाग केवल मेदे को गन्दा किए रहता है। ज्वर की दशा में हमारी पाचन शक्ति कम हो जाती है। जीभ काली या सफेद पड़ जाती है और होंठ सूख जाते हैं। यदि ज्वर की दशा में रोगी को कुछ भोजन दिया जाय तो वह उसे हज्म नहीं कर सकेगा और उसका ज्वर और भी अधिक बढ़ जायगा। उपवास करने से मेदे को भोजन पचाने का अवसर मिलता है इसी कारण रोगी को एक, दो दिन उपवास करना चाहिए। साथ ही उसे लूईकूने के आदेशानुसार दिन में एक या दो बार स्नान करना चाहिए। यदि वह अधिक निर्बल हो गया तो उसके पेड़ पर मिट्टी का पुलटिस बांधना चाहिए। अगर उसके सिर में पीड़ा हो तो भी मिट्टी की पुलटिस बाँधनी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो रोगी का सिर कपड़े से ढक कर उसे खुली हवा में रखना चाहिए। उसे खाने के लिये सिर्फ निंबू का रस गर्म पानी में मिलाकर देना चाहिए और जहाँ

तक हो सके उसमें खाण्ड न मिलानी चाहिए। यदि ऐसा करने से रोगी के दाँत खट्टे न पड़ें तो केवल यही पथ्य देने से बड़ा ही लाभ होता है। इसके बाद आधा या एक केला, एक चमंच जैतून का तेल निंबू के रस में मसलकर देना चाहिए। अगर उसे प्यास लगे तो पानी को एक घंटा औटने के बाद ठंडा हो जाने पर देना चाहिए या निम्बू का रस देना चाहिए। पानी उवालकर ही देना चाहिए। ठंडा पानी कभी भी नहीं देना चाहिये। उसके पहिनने का वस्त्र भी साधारण और कम होना चाहिए और समय २ पर उसको बदलते रहना चाहिए। इस उपचार से टाइफाइड ज्वरवाले रोगी को भी आराम हो गया है और वह पूर्ण स्वस्थ हो गया है। कुनैन के प्रयोग से भी रोग प्रत्यक्ष कम हो जाता है किन्तु इससे अन्य दूसरे रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मलेरिया रोग के लिए कुनैन बहुत उपयोगी है लेकिन मुझे मालूम है कि इससे चिरस्थायी लाभ नहीं होता। मलेरिया से पीड़ित रोगियों को उपरोक्त उपचार से पूर्णतः स्वस्थ होते मैंने देखा है।

बुखार की हालत में बहुत लोग केवल दूध पीकर रहते हैं। लेकिन मेरा अनुभव है कि वास्तव में बुखार के शुरू में दूध देने से हानि होती है। क्योंकि इसको पचाना कठिन है। यदि दूध देना ही हो तो उसे गेहूँ की बनी कहवा के साथ थोड़ा दूध और चावल का आटा मिलाकर उसे अच्छी तरह पका कर दिया जा सकता है। लेकिन अधिक ज्वर की दशा में इसे भी नहीं देना

चाहिए। ऐसी अवस्था में निम्बू का रस बहुत ही गुणकारी होता है। ज्योंही रोगी की जीभ साफ हो जाय उसे उपरोक्त तरीके से केले का बनाया हुआ पथ दे सकते हैं। यदि रोगी को दस्त न आता हो तो गर्म पानी में सुहागा मिलाकर पिचकारी देना चाहिए। उसके बाद जैतून के तेल का प्रयोग उसके मेदा को साफ कर सकता है।

कब्ज, संग्रहणी, पेचिश और बवासीर

इस प्रकरण में एक ही साथ चार रोगों पर विचार किया जाता है। पाठकों को इसमें कुछ आश्चर्य मालूम होगा लेकिन वास्तव में ये चारों रोग एक दूसरे से ऐसे सम्बन्धित हैं कि इनका उपचार करीब-करीब एक ही ढंग से किया जा सकता है। जब खाद्य पदार्थ के न पचने से मेदा अधिक गंदा हो जाता है तब इन रोगों में से कोई एक रोग मनुष्य के शरीर की अवस्था के अनुसार हो जाता है। किसी को कब्ज हो जाती है, दस्त साफ नहीं आता, दस्त लाने के लिये उन्हें जोर लगाना पड़ता है जिससे अन्त में खून आने लगता है तथा बवासीर का मस्सा निकल आता है। किसी-किसी को संग्रहणी का रोग हो जाता है, किसी को पेचिश हो जाती है और पेट में दर्द के साथ आंव आने लगता है।

इन सभी अवस्थाओं में रोगी की भूख कम हो जाती है। उसका शरीर पीला और कमजोर होने लगता है। जीभ पीली पड़ जाती है और स्वाँस से दुर्गन्ध आने लगती है। किसी-किसी के सिर में पीड़ा होने लगती है। कब्ज का रोग इतना प्रचलित हो गया है कि उसके लिए सैकड़ों तरह की गोलियाँ और चूर्ण तैयार किये गये हैं। “मधर्स-सिगल-शिरप” फ्रुट-साल्ट इत्यादि इसी रोग की विशेष औषधि हैं। लाखों रोगी इसका प्रयोग करते हैं फिर भी रोग कम नहीं होता। साधारण से साधारण वैद्य या हकीम

बतला सकता है कि अजीर्ण ही इस रोग का मूल कारण है तथा उसके निवारण का एक मात्र उपाय अजीर्ण को मिटाना ही है। सचमुच आज कल के विज्ञापनों में यहां तक लिखा रहता है कि “हमारी दवा में परहेज करने की आवश्यकता नहीं है। केवल दवा खाने ही से रोग दूर हो जायगा”। पाठकों को मालूम होना चाहिये कि इस तरह का विज्ञापन बिल्कुल गलत है। जुलाब का प्रभाव बहुत बुरा होता है। मामूली जुलाब भी कब्ज को दूर कर शरीर में दूसरा जहर उत्पन्न कर देता है। जुलाब से भले ही कब्ज और संग्रहणी इत्यादि बीमारियां न हों लेकिन उससे कोई अन्य बीमारी होने की अवश्य सम्भावना रहती है। यदि उससे कुछ लाभ भी हो जाय तो रोगी-मनुष्य के जीवन और रहन-सहन में परिवर्तन हो जाता है। यदि कोई अपनी पिछली बुरी आदतों को छोड़ दे और फिर कभी भविष्य में जुलाब न ले तो कुछ लाभ हो सकता है। जुलाब लेने से पुराना रोग भले ही दूर हो जाय। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि उसी जगह अन्य रोग हो जायेंगे।

पेचिश के रोगी का सबसे पहला यह काम होना चाहिये कि जहां तक हो सके भोजन की मात्रा कम कर दे ऐसे पदार्थ जैसे कि घी, खाण्ड, मक्खन वगैरह का तो उसे बिल्कुल ही परित्याग कर देना चाहिये। शराब तम्बाकू, कल के आटे की रोटियाँ, भंग, चाय, कहवा वगैरह तो उसे छूना भी नहीं चाहिये। उसका खाद्य पदार्थ मुख्यतः फल और जैतून का तेल होना चाहिये।

किसी औषधि का प्रयोग करने से पहले रोगी को ३६ घंटे तक उपवास करना चाहिए। उपवास के समय तथा उसके बाद मिट्टी की पुलटिश उसके पेड़ू पर बांधनी चाहिए और जैसे कि पहले कहा जा चुका है डा० लूईकूने के मतानुसार उसे स्नान भी कराना चाहिए। रोगी को प्रति दिन दो घंटा टहलना चाहिए। मैंने कितने ही कब्ज, संग्रहणी पेचिश और बवासीर के रोगियों को इस साधारण उपचार से नीरोग होते देखा है। हो सकता है कि बवासीर बिलकुल आराम न हो, लेकिन कम से कम उसका दर्द तो जाता ही रहेगा। पेचिश के रोगी को गर्म पानी में निम्बू का रस के सिवाय और कुछ नहीं खाना चाहिए विशेषकर उस अवस्था में जब कि उसे आंव या खून आता हो। यदि पेट में अधिक मरोड़ आती हो तो गर्म पानी से भरी बोतल या गर्म किया हुआ ईंट के टुकड़े से पेट को सेंकना चाहिये इस से दर्द बिलकुल बन्द हो जाता है। रोगी को हर हालत में खुली हवा में रहना चाहिए।

कब्ज के रोगी को अंजीर, फ्रेंच पाम्स (बेर) बड़ा मुनक्का, नारंगी, केला, किशमिश और हरी दाख बहुत लाभ पहुँचाती है। लेकिन इस का यह मतलब नहीं कि भूख न रहने पर भी ये फल खाये जाँय। पेट में मरोड़ होती हो या मुँह का स्वाद बिगड़ गया हो उस हालत में तो ये फल भी हरगिज नहीं खाना चाहिए।

छूत के रोग-शीतला (चेचक)

अब हम छूत के रोगों के उपचार के विषय में कुछ विचार करेंगे। यों तो सभी छूत के रोग भयंकर ही होते हैं, लेकिन चेचक का रोग सबसे भयंकर होता है। इसलिये इस के सम्बन्ध में इस प्रकरण में विशेष रूप से विचार किया जायगा और शेष रोगों का दूसरे प्रकरण में।

हम लोग शीतला रोग से बहुत ही डरते हैं और इसके विषय में हमारे कितने ही भ्रमपूर्ण विचार हैं। हम हिन्दुस्तानी इसे देवी मान इसकी पूजा-पाठ करते हैं। वास्तव में इस रोग का भी कारण मेदे की खराबी है। मेदे की खराबी के कारण हमारा खून खराब हो जाता है। और हमारे खून में विष पैदा हो जाता है। वही चेचक का मूल कारण है। जब यही कारण है तो हमें इससे डरने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। यदि यह सर्वथा छूत का रोग होता तो दूसरे को भी रोगी के छूने मात्र से हो जाता, लेकिन बहुधा ऐसा नहीं होता। यदि हम लोग सावधानी के साथ रोगी को छूवें तो कुछ भी नुकसान नहीं हो सकता। लेकिन साथ ही हमें बिल्कुल इस बात का विश्वास नहीं कर लेना चाहिए कि रोगी को छूने से छूने वाले को यह रोग हो ही नहीं सकता क्योंकि जिनके अन्दर वह विष पैदा हो जाता है उन्हें भी रोगी को छूने से यह रोग हो जाता है। यही कारण है कि जब कभी किसी मोहल्ले में इस रोग का प्रकोप होता है

तो अधिकांश आदमी इसी रोग के रोगी हो जाते हैं और हमें भ्रम हो जाता है कि यह एक छूत की बीमारी है। इसी आधार पर लोगों को यह समझा दिया जाता है कि यह छूत की बीमारी है, इस प्रकार लोगों को बहका कर टीका लगाया जाता है। उन्हें समझाया जाता है कि टीका लगाने से यह रोग नहीं होता। गाय के थन से चेचक का लस लगा कर उसमें से निकले हुए पीव को चमड़े द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश कर देने का नाम टीका है। कहा जाता है कि ऐसा कर देने से मनुष्य के शरीर पर शीतला निकल आती है और फिर आगे उन्हें महा शीतला का डर नहीं रहता।

लेकिन जब यह देखने में आया कि टीका लगाए हुए मनुष्य को भी चेचक निकल आती है तो एक नई सूझ निकाली गई और कहा जाने लगा कि अमुक समय पश्चात् फिर टीका लगा लेना चाहिए, यहाँ तक कि आज कल सभी लोगों के लिए चाहे वे टीका लगवाये हों या नहीं, जब कभी उनके गाँव या मोहल्ले में चेचक का प्रकोप हो, टीका लगा लेना अनिवार्य है। अतः ऐसे बहुत मनुष्य मिलते हैं जो पाँच २ छः २ या इससे भी अधिक बार टीका लगवाए हुए होते हैं।

टीका लेना एक जंगली रिवाज तथा हमारे वर्तमान समय की एक हानिकारक प्रथा है। संसार की जंगली जातियों में भी यह प्रथा नहीं है। इसके अधिकारी, जो टीका नहीं भी लगवाना चाहते उन्हें कानूनीभय दिखा कर टीका लगाने के लिए मजबूर

करते हैं। यह बहुत पुराना आविष्कार नहीं है बल्कि १७६८ ई० से ही यह प्रचलित है। लेकिन इतने थोड़े समय में ही लाखों मनुष्यों को यह विश्वास हो गया है कि टीका लगा लेने से चेचक के रोग से आदमी बच जाता है। ऐसा कोई नहीं कह सकता कि जिसे टीका नहीं लगाया गया है, उसे अवश्य ही यह रोग होगा, क्योंकि बहुतेरे ऐसे मिलेंगे जिन्हें टीका बिलकुल ही नहीं लगाया गया है, और फिर भी वे इस रोग से बचे हैं। इससे हम कदापि यह नहीं मान लेंगे कि टीका नहीं लगाने से जिन्हें यह रोग होगया है यदि वे टीका लगा लेते तो अवश्य ही इस रोग से बच जाते।

इसके अतिरिक्त यह एक बहुत ही गन्दी औषधि है। इस में केवल गाय के थन की लस ही नहीं लगाई जाती बल्कि शीतला रोग से पीड़ित मनुष्य से घाव के लस को भी मिला कर लगाया जाता है। इस पीब (मवाद) को देखकर कितने तो क्रै कर देंगे। यदि यह हाथ से छू जाती है तो हाथ को साबुन लगा कर धोना पड़ता है। यदि कोई हँसी में भी हमें पीब चखने को कहे तो हमारा जी मिचलाने लगता है। हम क्रोध से भर जाते हैं और उससे लड़ने को तैयार हो जाते हैं। लेकिन जो टीका लगवाते हैं, उनमें से बहुत कम ऐसे हैं जो इस बात पर विचार करते हों कि वे वास्तव में पीब ही खा रहे हैं। बहुतेरे इस बात को जानते हैं कि अनेक रोगों में औषधि और पोषक पदार्थ खून में यंत्र द्वारा भर दिया जाता है और वे अन्दर जाकर भोजन किए हुए

पदार्थ से भी पहले और अति शीघ्र हमारे खून में मिल जाते हैं। इस प्रकार औषधि लेने में और मुहँ से खाने में केवल इतना ही अन्तर है कि मुहँ से खाई हुई वस्तु देर से खून में मिलती है और यंत्र द्वारा शीघ्र ही मिल जाती है। तो भी हम टीका लेते जरा नहीं हिचकते। कहावत है कि “डरपोक लोग मृत्यु के पहले कई बार मर चुकते हैं।” हमारी टीका लेने की इच्छा एक मात्र इस रोग से बचने और उससे कुरूप होने के भय से ही उत्पन्न होती है।

इस प्रकार टीका लेकर शरीर में पीव संचारित करवाना मेरे विचार में धार्मिक एवं सदाचार की दृष्टि से भी घृणित है। माँसाहारी लोग भी मरे हुए जानवरों का खून नहीं पीते। फिर इस प्रकार जीवित प्राणी का खून और पीव खाने का तो प्रश्न ही नहीं उठना चाहिये। जो ईश्वर से डरता है उसके लिए हजार बार चेचक का शिकार होना, यहाँ तक कि मर भी जाना अच्छा है लेकिन इस प्रकार चमड़े द्वारा एक निरपराध जानवर के रक्त का पान करना अच्छा नहीं है।

टीका लगवाने से जो हानियाँ होती हैं उनके ऊपर इंग्लैण्ड के बहुत से विचारशील पुरुषों ने विचार किया है और उसके बहिष्कार के लिए एक अच्छी संस्था बनाई है। इस के सदस्य खुले आम इसका विरोध करते हैं जिनमें बहुतों को जेल की सज़ा भी दी गई है। वे निम्नांकित आधार पर इसका विरोध करते हैं:—

(१) गाय या बछड़े के थन से पीव निकालने में उन जीवित पशुओं पर क्रूरता का व्यवहार किया जाता है मनुष्य को दयाशील होना चाहिये, इस प्रकार की घृणित क्रियाएँ उस के व्यक्तित्व के लिये कलंक स्वरूप है। ऐसी हालत में टीका लगाने से यदि उसे कुछ लाभ भी होता हो तो नहीं लगाना चाहिये।

(२) टीका से लाभ के बदले हानियाँ अधिक होती हैं टीका लगाने के पहिले जिन रोगों का नाम भी नहीं सुनने में आता था वे रोग अब प्रचलित हो गये हैं। इसके समर्थक भी इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि इसके आविष्कार के साथ ही साथ कई नये रोगों की भी उत्पत्ति हुई है।

(३) चेचक के रोगी के शरीर से जो लस लिया जाता है उसमें रोगी के अन्य-अन्य रोगों के कीड़े भी सम्मिलित रहते हैं जो टीका लेने वालों में प्रवेश करके प्रायः उन्हीं रोगों को उत्पन्न करते हैं।

(४) इस बात का निश्चय नहीं है कि जिसने टीका ले लिया है उसे चेचक का रोग होगा ही नहीं। इसका आविष्कारक डा० जेनर की पहले यह धारणा थी कि केवल एक बार बाजू पर टीका लगाने से चेचक का रोग नहीं होता; लेकिन जब यह उनका भ्रम साबित हुआ तब उन्होंने दोनों बाजूओं पर टीका लगवाने की प्रथा आरम्भ की। जब यह भी गलत हुआ तब दोनों बाजूओं पर कई स्थानों पर लगाया जाने लगा। साथ ही यह भी कहा जाने लगा कि सात वर्ष पश्चात् इसे फिर से लेना चाहिए।

क्योंकि सात वर्ष पश्चात् इससे युक्ति पाने की कोई गारण्टी नहीं दी जा सकती। लेकिन अब तो तीन ही वर्ष के पश्चात् इसे लगाने की प्रथा निकली है। इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि डा० लोग स्वयं इससे सन्तुष्ट नहीं हैं। सच बात तो यह है कि यह नहीं कहा जा सकता कि टीका लगवाए हुए मनुष्य को यह रोग कभी होगा ही नहीं, अथवा जिन्हें यह रोग हो जाता है वह टीका न लेने ही के कारण होता है।

(५) अन्त में हम यह दावा के साथ कहते हैं कि लस एक गन्दी तथा दूषित पदार्थ है। ऐसी हालत में कोई भी यह मानने को तैयार नहीं होगा कि गन्दगी-से-गन्दगी दूर होती है और यदि हम ऐसा मानते हैं तो यह हमारी निरी मूर्खता है।

उस संस्था ने दलीलों के सिवाय और भी अनेकों उदाहरण पेश करके लोगों को टीका लगवाने के विरुद्ध अपने पक्ष में कर लिया है। अंग्रेजों की बहुत ऐसी बस्तियाँ हैं जहाँ के अधिकांश लोग टीका नहीं लगाते और फिर भी वे इस रोग से बचे हैं। टीके को जारी रखने की अनुमति डाक्टरों की स्वार्थ सिद्धि के लिए है। क्योंकि उन्हें प्रजा की ओर से लाखों रुपये इस काम के लिए मिल जाते हैं। इसी स्वार्थ ने उनकी आँखों पर पट्टी दे रखी है, जिसके कारण वे टीका से उत्पन्न बुराइयों को नहीं देख पाते। हाँ, कुछ ऐसे भी डाक्टर हैं जो इससे उत्पन्न बीमारियों को मानते हैं और इसके विरुद्ध हैं।

जो इसके सच्चे विरोधी हैं उन्हें चाहिए कि टीका न लेने के

कारण उन पर जो कुछ भी कानूनी दण्ड लगाया जाय, उसे सहन करें। जो स्वास्थ्य की दृष्टि से इसका विरोध करते हैं, उन्हें इस विषय की काफी जानकारी रखनी चाहिए ताकि वे अपना अनुभव दूसरों को भली-भाँति समझा सकें। लेकिन वे जिन्हें न तो इसकी काफी जानकारी ही है और न उनमें इतनी शक्ति ही है कि वे उसके प्रचलित नियमों का उलंघन कर सकें उन्हें वहाँ के कानून ही के अनुसार चलना चाहिए।

जो स्वास्थ्य के विचार से टीका नहीं लेना चाहते उन्हें स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का अक्षरशः पालन करना चाहिए। जो लोग टीका लेना नहीं चाहते लेकिन विषय-भोग द्वारा सदा उसका लस लेते हैं या आरोग्य सम्बन्धी नियमों को भंग करते हैं, उन्हें समाज या देश सम्बन्धी नियमों के विरुद्ध जहाँ टीका लेना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माना जाता हो, आचरण करने का कोई अधिकार नहीं है।

अब तक तो हमने शीतला पर लगनेवाले टीका के दोषों का वर्णन किया है। अब हम शीतला के कुछ उपचार बतायेंगे। जो लोग जल, वायु, भोजन के प्रकरण में बताए हुए नियमों के अनुसार चलेंगे उन्हें तो यह बीमारी होगी ही नहीं और यदि किसी को चेचक निकल आवे तो सबसे उत्तम महौषधि “वेट-शीट-पैक” पानी से भीगी हुई चादर का बाँधना ही है। इसे दिन में कम से कम तीन बार बाँधना चाहिए, इससे ज्वर कम हो जाता है और घाव शीघ्र भर जाते हैं। घावों पर मरहम पट्टी अथवा

तेल लगाने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। यदि सम्भव हो तो मिट्टी की पुलटिस एक दो स्थान पर, जहाँ बाँधने योग्य हो, बाँध देना चाहिए। रोगी को खाने के लिए चावल और हल्का फल देना चाहिए जिसमें नींबू का रस मिला हो। भारी खाद्य पदार्थ जैसे कि बादाम और खजूर बिल्कुल नहीं देना चाहिए। हफ्ते के अन्दर घाव उपरोक्त गीली चादर वाले उपचार से भर जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो समझना चाहिए कि अभी शरीर का ज्वर निकल रहा है। चेचक को एक भयंकर रोग समझने की अपेक्षा यह समझना अच्छा है कि प्रकृति देवी हमारे शरीर में एकत्रित विष को इस रोग द्वारा निकाल कर हमें स्वास्थ्य प्रदान कर रही हैं।

शीतला रोग दूर हो जाने पर भी कितने रोगी बहुत कमजोर तथा किसी अन्य रोग में ग्रसित देखे जाते हैं। इसका मुख्य कारण चेचक से छुटकारा पाने के लिए किए गए गलत उपचार हैं। ज्वर में बहुतों को कुनैन के सेवन से बहिरापन हो जाता है और कभी २ संज्ञाशून्य (बहिरापन विशेष) का भी रोग हो जाता है। व्यभिचार से उत्पन्न होनेवाले रोगों में पारा का प्रयोग किया जाता है, फल यह होता है कि पारा उस रोग को दबा कर अन्य अनेक रोग पैदा कर देता है जिसे आजन्म भोगना पड़ता है। दस्त साफ न होने पर दस्त लाने वाली औषधियों को बार २ सेवन करने से बवासीर हो जाती है। उपरोक्त बातों से पता चलता है कि अयोग्य औषधियों के सेवन से बीमारी

मिटने की अपेक्षा और कितनी ही नयी २ बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। अतः रोगों का उपचार बहुत सोच समझ कर करना चाहिए। वे ही उपचार लाभदायक हैं, जो रोग को जड़ से हटा दें और स्वास्थ्य पर कोई हानि न पहुँचे। बहुमूल्य भस्म भी जो रोगों के लिए रामबाण औषधि समझे जाते हैं बहुधा हानिकारक सिद्ध होते हैं; क्योंकि यद्यपि वे गुणकारी प्रतीत होते हैं, लेकिन वे काम को उत्तेजित करते हैं। फलतः स्वास्थ्य को बिगाड़ देते हैं।

यदि चेचक के रोगी को उपरोक्त साधारण उपचार किया जाय, तो केवल रोग ही नहीं दूर होगा बल्कि रोगी शीघ्र स्वस्थ होकर आजन्म इस रोग से मुक्त हो जायगा।

चेचक हट जाने पर जब दाने सूखने लगें तो रोगी के शरीर पर सदा “ओलिभ आयल” जैतून के तेल की मालिश करनी चाहिए एवं उसे रोज स्नान कराना चाहिए। इससे घाव की भूरियाँ शीघ्र गिर जाती हैं; दाग मिटने लगते हैं और चमड़ा पहले जैसा होने लगता है।

छूत के अन्य दूसरे रोग

छोटी शीतला से हम उतना नहीं डरते जितना की उसकी बहन बड़ी शीतला से। क्योंकि हम सोचते हैं कि यह उतना घातक नहीं है और न इससे रोगी कुरूप ही होता है। लेकिन यह भी एक प्रकार का चेचक ही है और इसका भी उपचार उसी तरह करना चाहिए जिस तरह शीतला का किया जाता है। शीतला, छोटी शीतला के सिवा, प्लेग, कालरा या हैजा और उड़ती पेचिस भी छूत के रोगों में शामिल हैं।

प्लेग एक भयंकर रोग है। अंग्रेजी में इसे “व्यूवानिक प्लेग” कहते हैं। यह रोग पहले-पहल हमारे देश में सन् १८६६ ई० में उत्पन्न हुआ और तब से अबतक इसने असंख्य आदमियों को मृत्यु की गोद में सुला दिया है। इससे छुटकारा पाने के लिये डाक्टरों ने अनेकों औषधियों का आविष्कार किया है, लेकिन फिर भी इसकी समुचित औषधि तैयार नहीं हो सकी है। आज-कल प्लेग का एक टीका निकाला है और लोगों की धारणा हो रही है कि इसके लगाने से इस रोग का आक्रमण नहीं होता। लेकिन प्लेग का टीका भी उतना ही हानिकारक और धार्मिक दृष्टि से पाप-मय है, जितना कि चेचक का टीका। यद्यपि इस रोग के लिए कोई औषधि विशेष रूपसे तैयार नहीं हो सकी है फिर भी हम उन लोगों के लिए जिन्हें प्रकृति में पूर्ण विश्वास है तथा जो मृत्यु से नहीं डरते, निम्नलिखित उपचार करने की सलाह देंगे।

(१) ज्यों ही ज्वर शुरू हो पानी से भिगी चादर 'वेट-शीट-पैक' का प्रयोग करना चाहिए।

(२) गाँठ (गिल्टी) निकलने पर मिट्टी की मोटी पुलटिस बाँधना चाहिए।

(३) रोगी को पूर्ण उपवास करना चाहिए।

(४) यदि उसे प्यास मालूम हो तो ठंडे पानी में नींबू का रस मिला कर देना चाहिए।

(५) उसे खुली हवा में सुलाना चाहिए।

(६) रोगी के निकट एक से अधिक व्यक्ति को उसकी देख-रेख के लिए नहीं रहना चाहिए।

हम विश्वास दिला सकते हैं कि यदि प्लग किसी उपचार से अच्छा हो सकता है तो वह इस उपचार से और भी शीघ्र अच्छा हो सकता है।

यद्यपि इस रोग की उत्पत्ति के मुख्य कारण का अभी तक पता नहीं लग सका है। फिर भी लोगों का आम ख्याल है कि इस रोग को अधिकतर चुहे फैलाते हैं। अतः हमें चूहों से हर तरह की सावधानी रखनी चाहिए, हमें अपने घरके खाने-पीने के सब सामान ढककर रखना चाहिए जिसमें चूहों को वहां खाने की असुविधा हो और वे वहां से दूसरी जगह चले जाय यदि किसी मोहल्लेमें प्लेग का प्रकोप हो गया हो और बहुत प्रयत्न करने पर भी चूहों से हम अपना पिण्ड न छुड़ा सकें तो हमें चाहिए कि उस घर को कुछ दिनों के लिये खाली कर दें।

प्लेग के आक्रमण से बचने का सबसे अच्छा उपाय स्वास्थ्य

छूत के अन्य दूसरे रोग

छोटी शीतला से हम उतना नहीं डरते जितना की उसकी बहन बड़ी शीतला से। क्योंकि हम सोचते हैं कि यह उतना घातक नहीं है और न इससे रोगी कुरूप ही होता है। लेकिन यह भी एक प्रकार का चेचक ही है और इसका भी उपचार उसी तरह करना चाहिए जिस तरह शीतला का किया जाता है। शीतला, छोटी शीतला के सिवा, प्लेग, कालरा या हैजा और उड़ती पेचिस भी छूत के रोगों में शामिल हैं।

प्लेग एक भयंकर रोग है। अंग्रेजी में इसे “व्यूचानिक प्लेग” कहते हैं। यह रोग पहले-पहल हमारे देश में सन् १८६६ ई० में उत्पन्न हुआ और तब से अबतक इसने असंख्य आदमियों को मृत्यु की गोद में सुला दिया है। इससे छुटकारा पाने के लिये डाक्टरों ने अनेकों औषधियों का आविष्कार किया है, लेकिन फिर भी इसकी समुचित औषधि तैयार नहीं हो सकी है। आज-कल प्लेग का एक टीका निकाला है और लोगों की धारणा हो रही है कि इसके लगाने से इस रोग का आक्रमण नहीं होता। लेकिन प्लेग का टीका भी उतना ही हानिकारक और धार्मिक दृष्टि से पाप-मय है, जितना कि चेचक का टीका। यद्यपि इस रोग के लिए कोई औषधि विशेष रूपसे तैयार नहीं हो सकी है फिर भी हम उन लोगों के लिए जिन्हें प्रकृति में पूर्ण विश्वास है तथा जो मृत्यु से नहीं डरते, निम्नलिखित उपचार करने की सलाह देंगे।

- (१) ज्यों ही ज्वर शुरू हो पानी से भिगी चादर 'वेट-शीट-पैक' का प्रयोग करना चाहिए ।
- (२) गॉठ (गिल्टी) निकलने पर मिट्टी की मोटी पुलटिस बाँधना चाहिए ।
- (३) रोगी को पूर्ण उपवास करना चाहिए ।
- (४) यदि उसे प्यास मालूम हो तो ठंडे पानी में नींबू का रस मिला कर देना चाहिए ।
- (५) उसे खुली हवा में सुलाना चाहिए ।
- (६) रोगी के निकट एक से अधिक व्यक्ति को उसकी देख-रेख के लिए नहीं रहना चाहिए ।

हम विश्वास दिला सकते हैं कि यदि प्लेग किसी उपचार से अच्छा हो सकता है तो वह इस उपचार से और भी शीघ्र अच्छा हो सकता है ।

यद्यपि इस रोग की उत्पत्ति के मुख्य कारण का अभी तक पता नहीं लग सका है । फिर भी लोगों का आम ख्याल है कि इस रोग को अधिकतर चुहे फैलाते हैं । अतः हमें चूहों से हर तरह की सावधानी रखनी चाहिए, हमें अपने घरके खाने-पीने के सब सामान ढककर रखना चाहिए जिसमें चूहों को वहां खाने की असुविधा हो और वे वहां से दूसरी जगह चले जाय यदि किसी मोहल्लेमें प्लेग का प्रकोप हो गया हो और बहुत प्रयत्न करने पर भी चूहों से हम अपना पिण्ड न छुड़ा सकें तो हमें चाहिए कि उस घर को कुछ दिनों के लिये खाली कर दें ।

प्लेग के आक्रमण से बचने का सबसे अच्छा उपाय स्वास्थ्य

सम्बन्धी नियमों का पालन करना है। हमें खुली हवा में सोना चाहिए। साधारण तथा पोषक पदार्थ थोड़ी मात्रा में खाना चाहिए एवं घर को साफ-सुथरा रखना चाहिए। नित्य-स्थितिमें रूप से व्यायाम करना चाहिये। हर तरह के व्यसन छोड़ देने चाहिए और यथासाध्य साधारण जीवन व्यतीत करना चाहिए यों तो हमें इस ढंग से सदैव ही रहना चाहिये। लेकिन यदि हम सदैव ऐसा न कर सकें तो कम-से-कम प्लेग के दिनों में तो विशेष सावधानी रखनी ही चाहिए।

सन्निपातिक ज्वर इससे भी भयंकर होता है। यह शीघ्र आक्रमण करता है और बहुत ही घातक होता है। रोगी को अधिक ज्वर हो जाता है। स्वांस लेने में उसे कष्ट मालूम होता है और कभी-कभी वह बेहोश हो जाता है। इस किस्म का रोग पहले-पहल जोहन्सवर्ग में सन् १६०४ ई० में शुरू हुआ था। इस बारे में पहले कहा गया है कि तेईस रोगियों में केवल एक बच सका था इस रोग पर प्रायः वे सभी उपचार प्रयोग में लाये जा सकते हैं। जो 'व्यूवानिक प्लेग' पर काम में लाये जाते हैं, अन्तर इतना ही है कि पुलटिस को इस रोग में सीने के दोनों बगल में बांधना चाहिए। यदि 'वेट-शीट-पैक' के प्रयोग करने का मौक़ा न मिले तो पतली पुलटिस सिर में बाँधना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस रोग का उपचार करने से पहले इसके रोकने की व्यवस्था करनी चाहिये। प्लेग और इसके रोकने में प्रायः एक से ही उपचार काम में लाए जाते हैं।

हम लोग कालरा या हैजा (महामारी) से भी उतना ही डरते हैं जितना कि प्लेग से, लेकिन यह रोग इतना भयानक नहीं है। इस रोग में 'वेट-शीट-पैक' से कुछ लाभ नहीं होता। मिट्टी की पुलविस रोगी के पेट पर बाँधना चाहिए। जिस अङ्ग में खूनसनी मालूम होती हो उसे गरम पानी की बोतल से सेंकना चाहिए। पाँव में सरसों का तेल मलना चाहिए और रोगी को उपवास करना चाहिए। रोगी को घबड़ाहट न मालूम हो इसकी सावधानी रखनी चाहिए। यदि उसे दस्त जल्द-जल्द आता हो तो उसे बार २ बिस्तरे से नहीं उठाना चाहिए बल्कि एक चौड़े मुँह का बर्तन चारपाई के नीचे दस्त इकट्ठा करने के लिए रख देना चाहिए। यदि इस रोग में पहले से ही सावधानी रखी जाय तो खतरे का डर नहीं रहता। यह रोग बहुधा गर्मी के दिनों में हुआ करता है क्योंकि गर्मी के दिनों में हम हर-किस्म के कच्चे-पक्के फल खाते हैं। पानी भी उन दिनों में प्रायः गन्दा ही होता है और हम उसी पानी को पीते हैं, क्योंकि उन दिनों में कुएं का पानी कम हो जाता है, हम लोग पानी को उबाल कर अथवा छान कर नहीं पीते। रोगी के पाखाने को भी खुला छोड़ देते हैं जिसका फल यह होता है कि रोग के कीड़े हवा में फैलते हैं। वास्तव में जब हम इस पर विचार करते हैं तो हमें मालूम होता है कि उपरोक्त विषयों पर हमारा बहुत कम ध्यान रहता है फिर भी हम इन रोगों से वंचित रहते हैं यह आश्चर्य की बात है।

अब हमें उन बातों पर विचार करना चाहिए जिन की जान-

कारी कालरा के दिनों में हमारे लिए आवश्यक है। हमें उन दिनों हल्का भोजन करना चाहिए। स्वच्छ हवा में स्वांस लेनी चाहिए। जो पानी हम पीते हैं सदैव उबालकर, मोटे कपड़े से छानकर पीना चाहिए। रोगी का पाखाना राख या मिट्टी से ढक देना चाहिए। पाखाने को राख या मिट्टी से ढकने की क्रिया तो हमें सदैव बिना रोक-टोक के करनी चाहिए। ऐसा करने से रोग के फैलने का कम डर रहता है। बिल्ली गड्ढा खोद कर पाखाना करती है और उसे ढक देती है, लेकिन हम लोग उससे भी बदतर हैं। क्योंकि हम घृणा अथवा छुआछूत के फेर में पड़ कर ऐसा न करके इस बीमारी को फैलाते हैं और हजारों मनुष्यों को मृत्यु के मुख में डाल देते हैं।

जिन लोगों को छूत का रोग हो गया हो उनके पास रहने वालों को चाहिये कि वे हर तरह रोगी को विश्वास दिलायें कि भय की कोई बात नहीं है। क्योंकि भय उत्पन्न होने ही से अक्सर रोगी को हानि पहुँचती है।

सौरी और बच्चा

पिछले प्रकरणों के लिखने का मेरा मुख्य उद्देश्य यही है कि साधारण रोगों के कारण, और उनके उपचार का कुछ ज्ञान प्रायः सर्वसाधारण को हो जाय। हमें पूर्ण विश्वास है कि वे मनुष्य जिन्हें सर्वदा कोई न कोई रोग घेरे ही रहते हैं और जो मृत्यु के नाम से डरते हैं उनको किसी तरह की पुस्तक क्यों न दी जाय, वे डाक्टरों की शरण लिये बिना कदापि नहीं रहेंगे हालांकि मैं इसके विरुद्ध हूँ। मैं यह भी कह सकता हूँ कि बहुत थोड़े लोग ऐसे होंगे जो प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा अपने रोगों को अच्छा करके सर्वदा के लिए रोग मुक्त होने का उद्योग करते हैं। जो ऐसा करेंगे उन्हें इस बात का अनुभव होगा कि इन उपचारों और नियमों से बहुत लाभ होता है। इस पुस्तक को समाप्त करने के पहले हम कुछ मोटी-मोटी बातें सौर और बच्चे की देख-रेख के विषय में बतलायेंगे। साथ ही कुछ आकस्मिक घटनाओं के बारे में भी लिखेंगे।

पशुओं के बारे में हम कुछ नहीं जानते कि प्रसव काल में उन्हें कुछ पीड़ा होती है या नहीं। किन्तु पूर्ण स्वस्थ स्त्री को तो प्रसव काल में पीड़ा होनी ही नहीं चाहिए। देहात में बहुतेरी स्त्रियाँ प्रसव की पीड़ा की कुछ परवाह नहीं करती और अन्तिम समय तक अपना काम करती रहती हैं। बहुतेरी मजदूरी करने वाली स्त्रियों को प्रसव के थोड़े ही दिन बाद मजदूरी करते देखा जाता है।

तब क्या कारण है कि शहर और कस्बे की स्त्रियों को ही प्रसव के समय इतनी पीड़ा होती है? क्या कारण है कि उन्हें प्रसव के पूर्व और पश्चात् उपचार की विशेष आवश्यकता पड़ती है।

उत्तर बहुत आसान और स्पष्ट है। शहर की स्त्रियों को अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उनका खान-पान, रहन-सहन साधारणतः स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध हुआ करता है। इसके अतिरिक्त वे असमय गर्भ धारण करती हैं और प्रसव के बाद शीघ्र ही पुरुषों का शिकार हो जाती हैं। अतः उन्हें कब्जीयत का रोग हो जाता है। हमारे देश की लाखों कन्याओं और स्त्रियों की यह अवस्था हो रही है। मेरे विचार से ऐसा जीवन नर्क से भी बुरा है। जबतक पुरुष ऐसा पाशविक आचरण करते रहेंगे हमारी स्त्रियाँ सुखी नहीं रह सकतीं। बहुत से लोग इस दोष को स्त्रियों के मध्ये मढ़ते हैं, लेकिन यह किसका दोष है इस पर विचार करने के लिए हमें यहाँ स्थान नहीं है। हमें केवल बुराइयों को देखना है और उससे छुटकारे का उपाय बतलाना है। सभी विवाहित स्त्री-पुरुष को यह याद रखना चाहिये कि जब तक वासना की वृत्ति की बुरी टेव, खास कर छोटी उम्र में गर्भ धारण कर लेने की बुरी प्रथा और बच्चा पैदा होने के बाद ही सम्भोग करने की आदत छूट न जायगी तब तक प्रसव की पीड़ा दूर नहीं हो सकती। स्त्रियाँ प्रसव की पीड़ा को चुप-चाप सहन करती हैं यह नहीं सोचती कि स्वयं उनकी इच्छा से ही ऐसा होता है

उनकी संतान दुबली-पतली और कमजोर होती जाती है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष का यह कर्तव्य है कि वे अपने को इस विपत्ति से बचावें। कम से कम यदि एक भी स्त्री-पुरुष इसका पालनकरें तो इसका यह मतलब होगा कि वे अपना आदर्श दिखला कर संसार को पतित अवस्था से उठा रहे हैं। यह एक ऐसा आवश्यक विषय है कि इसके लिये एक को दूसरे की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये।

उपरोक्त बातों से यही प्रतीत होता है कि गर्भ ठहर जाने के बाद पुरुष को स्त्री-प्रसंग नहीं करनी चाहिये और नौ मास तक तो स्त्री के ऊपर विशेष जिम्मेदारी रहती है। उसको इस बात का ज्ञान और विश्वास करा देना चाहिये कि उसके भावी सन्तान का भविष्य सर्वथा उसके इस नौ महीने की रहन-सहन पर निर्भर करता है। यदि वह अच्छी-अच्छी वस्तुएं पसन्द करेगी तो भविष्य में उसकी होने वाली संतान भी उन्हीं वस्तुओं को पसन्द करेगी। यदि वह क्रोध करेगी या उसके अन्दर बुरी-बुरी भावनायें उत्पन्न होंगी तो उसकी सन्तान भी क्रोधी तथा बुरी भावना वाली होगी। अतः इस नौ महीने की अवधि में उसे चाहिए कि वह अच्छे-अच्छे कार्य करे, व्यर्थ की चिन्ताओं को छोड़ दे, कोई बुरी वासना अन्दर न आने दे, कभी झूठ न बोले और एक पल भी बेकार एवं बुरी बातों में न बितावे। ऐसी माता की संतान अवश्य ही बलवान और पराक्रमी होगी।

गर्भिणी को अपने शरीर और विचार को पवित्र रखना चाहिए। उसे स्वच्छ वायु में रहना चाहिए। उसे साधारण और

पुष्टिकर पदार्थ उतनी ही मात्रामें खाना चाहिए जिसे वह सुगमता से पचा सके। यदि भोजन सम्बन्धी सभी नियमों का वह पालन करेगी तो उसे डाक्टर की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं होगी। यदि उसे दस्त की शिकायत हो तो उसके भोजन में जैतून के तेल की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। यदि उसे क़ै आवे या जी मिचलाता हो तो पानी में नीम्बू का रस मिलाकर लेना चाहिए। उसमें खांड नहीं मिलानी चाहिए। गर्भावस्था के नौ महीनों में हर हालत में मसाला एवं वघार बिल्कुल छोड़ देना चाहिए।

गर्भावस्था में स्त्रियों को नयी २ वस्तुओं के प्राप्ति की इच्छा होती है। ऐसी हालत में उन्हें डा० कूने के बतलाये हुए तरीक़े से स्नान करने से लाभ होता है। इससे उनका स्वास्थ्य और उत्साह बढ़ता है एवं उन्हें प्रसव की पीड़ा मालूम नहीं होती। गर्भावस्था में उनको अपने मन पर अधिकार रखना चाहिए ज्यों ही किसी वस्तु की इच्छा पैदा हो उसे शीघ्र दबा देना चाहिये। माता-पिता को चाहिए कि वे सदा गर्भस्थ बच्चे की रक्षाके लिये सावधानी रखें।

पुरुष का कर्तव्य है कि वह ऐसी अवस्था में स्त्री को शान्तमय जीवन व्यतीत करने दे। किसी प्रकार की लड़ाई भगड़ा उससे न करे और सदा उसको प्रसन्न-चित्त रखने की कोशिश करे। उसे घरेलू परिश्रम का काम न करने देना चाहिये। और रोज थोड़ी देर तक खुली हवा में टहलने देना चाहिये। इस अवस्था में किसी प्रकार की जड़ी-बूटी या औषधि कदापि न देनी चाहिये।

शिशु-पालन

इस प्रकरण में हम धाय के सभी कर्तव्यों का वर्णन नहीं करेंगे बल्कि यही बतलायेंगे कि शिशु-पालन कैसे किया जाता है। जो पिछले प्रकरणों को पढ़ आये हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि जच्चे को अन्धेरे कमरे में जहाँ रोशनी न जाती हो, मैले कुचैले कपड़ों पर, चारपाई के नीचे आग रख कर सुलाना हानिप्रद है। यह रिवाज चाहे कितना पुराना क्यों न हो—बहुत बुरा तथा हानिकारक है। हाँ जाड़े के दिनों में जच्चे को गर्म रखने के लिए कम्बल ओढ़ा सकते हैं। यदि कमरा अधिक ठंडा हो तो आग जलानी चाहिए, लेकिन आग बाहर जलानी चाहिए और जब उसमें से धुआँ निकलना बन्द हो जाय तब अन्दर लानी चाहिए, लेकिन फिर भी उसके चारपाई के नीचे नहीं रखना चाहिए। गर्म पानी से भरे बोतलों को उसके चारपाई पर रखकर गर्मी पहुँचाई जा सकती है। बच्चा पैदा हो जाने पर सब कपड़े और चादरों को साफ कर देना चाहिए और तब उसे प्रयोग में लाना चाहिए।

चूँकि बच्चे का स्वास्थ्य उसकी माँ के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है अतः उसके भोजन में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। यदि उसे गोहूँ की बनी चीजें, केला, औलिभ आयल (जैतून का तेल) खाने को दिया जाय तो उसे काफी गर्मी और ताकत मालूम

होगी और उसे काफ़ी दूध भी उतरता है, जैतून का तेल सेवन करने से मां के दूध में एक विशेष शक्ति पैदा हो जाती है जिसके पीने से बच्चे को दस्त साफ आती है इस तरह बच्चा भी रोग से बचा रहता है। यदि बच्चा बीमार हो जाय तो उसकी मां के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना चाहिए। बच्चे को दवा देना उसे जान बूझ कर मारना है। क्योंकि उसका मेदा नाजुक होता है। जिससे दवा का ज़हर शीघ्र पड़ता है। अतः जो कुछ औषधि देनी हो, माता को देनी चाहिये। औषधि का गुण उसकी माता के दूध में आकर बच्चे को लाभ पहुँचाता है। यदि बच्चे को कफ हो जाय या दस्त आवे तो डरने की कोई बात नहीं है। हमें एक दो दिन देख लेना चाहिए और उसके कारण का पता लगाना चाहिए। कारण मालूम हो जाने पर छुटकारे का उद्योग करना चाहिए। एक ब एक इसके लिए दौड़ धूप कर दवा-दारु करने से और भी खराबी पहुँचेगी।

बच्चे को गुन-गुने पानी से स्नान कराना चाहिए। उसका वस्त्र यथासाध्य कम और पतला हो और यदि हो सके तो बिलकुल न पहनाये जाँय। बच्चे को मोटे कपड़े पर सुलाकर गर्म चादर से ढके रहना चाहिए। इससे कपड़े पहिनाने की आवश्यकता पूरी हो जायगी और कपड़े भी गन्दे होने से बचेंगे एवं बच्चा भी बलवान होगा। नाल के ऊपर कपड़े की चौपरता बनाकर रख दे और ऊपर से उसे दूसरे कपड़े से मुलायम बाँध दे। नाल पर तागा बाँधकर उसे गले में लटकाने की

प्रथा हानिकर है। नाल की पट्टी को खोलते रहना चाहिए। यदि नाल के इर्द-गिर्द नमी मालूम पड़े तो वारीक पीसा हुआ स्वच्छ चावलों का आटा छान कर रूई के द्वारा उस पर छिड़क देना चाहिए।

जब तक बच्चे को माँ का दूध काफी मिलता हो उसे उसी पर रखना चाहिए। लेकिन जब कुछ कम पड़ने लगे तो भूने हुए गेहूँ को पीसकर गर्म पानी और थोड़ा सा गुड़ मिलाकर पिलाने से दूध ही के ऐसा लाभ होता है। आधा केले को खूब मसल लिया जाय और उसमें एक चम्मच जैतून का तेल मिला कर देने से बड़ा लाभ होता है। अगर गाय का दूध देना हो तो एक भाग दूध से तीन भाग पानी मिलाकर गरम करे। जब एक उबाल आ जाय तो थोड़ा सा गुड़ मिला दे (मगर खांड नहीं) तब वह दूध देना चाहिए। बच्चे को धीरे २ फल खाने की आदत डालनी चाहिए ताकि शुरु ही से उसका खून साफ रहे और वह सुन्दर और बलिष्ठ हो। वे मातायें जो अपने बच्चों को दाँत जमते ही उन्हें चावल, दाल और शाक खिलाने लगती हैं उन्हें बहुत हानि पहुँचाती हैं। चाय और कहवा तो बिल्कुल ही नहीं देना चाहिए।

जब बच्चा कुछ बड़ा होकर घुटनों के बल चलने लगे तो उसे कुरता या ऐसा ही कोई दूसरा वस्त्र पहनाना चाहिए, लेकिन उसका पाँव नंगा ही रखना चाहिए। ताकि वह अपनी इच्छा अनुसार इधर-उधर घूमता रहे। जूता पहना देने से खून का दौरा रुक जाता है और पाँव तथा पैर के मजबूत होने और

बढ़ने में रुकावट पैदा होती है। सुन्दरता बढ़ाने के लिये बच्चों को रेशमी या बेल-बूटेवाले वस्त्र पहनाना, टोप, कोट या जेवर पहनाना एक बहुत ही बुरी प्रथा है। प्रकृति ने बच्चे को जो प्राकृतिक सुन्दरता दी हो, हमें अपने परिश्रम और प्रयत्नों से उसे बढ़ा की चेष्टा करनी चाहिये। दिखावे के लिये बच्चों का बाल-शृंगार करना हमारी अज्ञानता का सूचक है। हमें सदा याद रखना चाहिए कि बच्चे की शिक्षा उसके जन्म-काल ही से आरम्भ हो जाती है। उनके सच्चे शिक्षक तो माँ-बाप ही होते हैं। माँ-बाप के रहन-सहन का प्रभाव उस बच्चे पर पड़ता है। उन्हें डराना, धमकाना, सजा देना और उनके शरीर पर आभूषण लादना, उन्हें ठूस २ कर खिलाना आदि बातें शिक्षा के नियमों के विरुद्ध हैं। जैसे कि पुरानी कहावत है कि “माता-पिता ही का गुण लड़कों में आता है” यदि माता पिता की चाल-ढाल और रहन-सहन सादा होता है तो बच्चा भी वैसा ही होता है यदि वे नाजुक मिजाज के होते हैं, तो बच्चा भी प्रायः वैसा ही हो जाता है। यदि वे सत्य और स्पष्टवादी हैं तो बच्चा भी वैसा ही होता है। यदि वे तुतला कर बोलते हैं तो वह भी वैसे ही बोलने लगता है। यदि वे बुरे शब्दों का प्रयोग करते हैं और उनमें कुछ बुरी टेब पड़ गई है, तो बच्चा भी उसी का अनुसरण करता है। तात्पर्य यह है कि माँ-बाप का कोई भी काम ऐसा नहीं, जिसको बच्चा करने न सीख जाय। बड़े २ विद्वानों का यह कहना है कि माँ-बाप के पास रह कर बच्चे को जो शिक्षा मिलती है वह फिर कभी नहीं मिलती।

अब हम लोग समझ गये कि मां-बाप की जिम्मेदारी बच्चे के प्रति कितनी भारी है। उनका मुख्य कर्त्तव्य है कि वे बच्चे को ऐसी शिक्षा दें जिससे वह सत्यवादी, ईमानदार और अपने समाज का आभूषण बन जाय। पशु और फल वगैरह के विषय भी हम यही देखते हैं कि जो जिस नस्ल का है प्रायः उनसे उत्पन्न पशु या फल भी उन्हीं जैसे होते हैं। केवल मनुष्य ही प्रकृति के नियम को भंग करता है। यह केवल मानव-समाज ही में देखा जाता है कि नेकचलन मनुष्य की बदचलन सन्तान होती है और बलवान की सन्तान प्रायः निर्बल हो जाती है। उसका कारण यह है कि हम बिना समझे-बूझे मां-बाप बन जाते हैं जब कि हम उस पद के योग्य नहीं होते मां-बाप का यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चों का उचित रीति से पालन-पोषण करें यह तभी सम्भव हो सकता है जब मां-बाप दोनों ही स्वयं उचित शिक्षा प्राप्त किये हों। जो माँ-बाप इस तरह की शिक्षा से वंचित हैं, उनका यह कर्त्तव्य होता है कि वे अपने बच्चों को किसी योग्य अभिभावक को देख-रेख में रख दें। ऐसा विश्वास करना निरी मूर्खता है कि बच्चों को केवल स्कूल भेज देने ही से वे सदाचारी बन जायेंगे। सदाचारी बनाने के लिये उन्हें अच्छी संगति में रखना आवश्यक है। जो शिक्षा स्कूल में दी जाती है वह घरेलू शिक्षा के बराबर बच्चे पर असर नहीं कर सकती। यह बात पहले ही बतलायी गई है कि मुख्य शिक्षा जन्म-काल ही से प्रारम्भ होती है। खेलने के समय से ही बच्चों की बुद्धि का विकाश होता है और

उन्हें शारीरिक, मानसिक एवं धार्मिक शिक्षा मिलने लगती है, बचपन में माँ-बाप से खेलते-खेलते बच्चा अक्षर तथा गिनती का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। बच्चों को स्कूल भेजने की प्रथा थोड़े ही दिनों से प्रचलित हुई है। यदि माँ-बाप बच्चों के प्रति अपने कर्त्तव्य का उचित पालन करें तो इसमें सन्देह नहीं कि बच्चे बहुत ही उच्चकोटि के होंगे। लेकिन सच बात तो यह है कि हम लोग बच्चों को अपने मनोरंजन की एक सामग्री समझ बैठे हैं। उनके शरीर को सुन्दर वस्त्रों से सजाते हैं और उन्हें आभूषण पहनाते हैं। हम उन्हें बहुधा मिठाई का लालच देते हैं और बचपन ही में लाड़-प्यार करके उन्हें बिगाड़ देते हैं। हम अनुचित लाड़-प्यार के कारण उन्हें स्वतन्त्र छोड़ रखते हैं और उनके कामों में रो-टोक नहीं करते। जब हम लोग स्वयं कंजूस, कामी, बेईमान, आलसी और गन्दे हैं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है अगर हमारे बच्चे भी वैसे ही लालची, निर्बल, स्वाधीन, आलसी, कामी एवं दुराचारी होते हैं। उपरोक्त बातों पर विचारवान माँ-बाप को ध्यान देना चाहिए। क्योंकि उन्हीं के ऊपर हमारे देश का भविष्य निर्भर है।

कुछ आकस्मिक घटनायें

डूबना

अब हम उन आकस्मिक घटनाओं की ओर ध्यान देंगे तथा उनके उपचार के विषय में कुछ बतलायेंगे। जिनका प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ ज्ञान रखना आवश्यक है ताकि समय पड़ने पर वे अपनी तथा दूसरों की कुछ सहायता कर सकें और बहुतां का अमूल्य जीवन बचा सकें। बालकों को भी इनका उपचार सिखलाना चाहिए ताकि बड़े होने पर वे दयालु हो सकें।

पहले हम डूबे हुए मनुष्य का उपचार बतलायेंगे। हवा के बिना मनुष्य पांच मिनट से अधिक नहीं जीवित रह सकता है। डूबते हुए मनुष्य को बाहर निकालने पर उसके अन्दर कुछ प्राण का संचार रहता है। अतः शीघ्रातिशीघ्र उसे होश में लाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए दो कामों का करना आवश्यक है। पहला—उसके अन्दर स्वांस आने जाने का प्रयत्न किया जाय। दूसरा—उसे गर्मी पहुँचाई जाय। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि पहला काम नदी या तालाब के किनारे ही करना पड़ता है जहाँ पर कि सब आवश्यक वस्तुओं का मिलना कठिन है। खास कर यह उपाय तभी किया जा सकता है जब कि वहाँ दो तीन आदमी और हों। सहायक के लिए यह आवश्यक है कि वह समय-सूचक, धैर्यवान, और फुर्तिला हो। क्योंकि यदि वह स्वयं घबड़ा उठेगा तो वह कुछ भी मदद नहीं कर सकेगा। ऐसे

ही यदि सहायक-गण उपचार के विषय में वाद-विवाद करने लगे तो उस मनुष्य के बचने की कम आशा रहती है। उनमें सबसे अधिक जानकारी रखनेवाले को चाहिए कि वह अन्य सहायकों को बतलावे और सहायकों को चाहिए कि वे उसकी आज्ञानुसार कार्यवाही करें।

डूबे हुए मनुष्य को ज्योंही पानी से बाहर निकाला जाय उसका बदन अच्छी तरह पोंछ दिया जाय, उसके भीगे कपड़ों को उसके बदन से अलग कर देना चाहिये। तब उसके दोनों हाथों को उसके सिर के नीचे कर उसे पट (आँधा) सुला देना चाहिये। अपने हाथ को उसके छाती पर रख उसके मुँह के पानी और मिट्टी वगैरह निकाल देना चाहिये। अब उसकी जीभ बाहर निकल आयगी उसे रुमाल से पकड़ लेना चाहिये और तब तक पकड़े रहना चाहिये जब तक कि वह होश में न आ जाय। होश में आते ही उसके सिर और छाती को कुछ पाँव से ऊपर कर उसे सीधा कर देना चाहिये। एक सहायक को उसके सिर की तरफ घुटनों के बल बैठकर धीरे-धीरे उसके हाथों को फैला देना चाहिये। ऐसा करने से उसकी पसलियां उठेंगी और स्वांस आने-जाने लगेगा। इसके अलावा गर्म और ठण्डे पानी को हाथ में लेकर उसके सीने पर छिड़कते रहना चाहिये। यदि आग मिल सके तो उससे उसको गर्मी पहुँचाना चाहिये। इसके बाद जहाँ तक कपड़े मिल सकें उसको पहिना देना चाहिये जिससे उसके शरीर में गर्मी पहुँचे। ये सब उपचार पूर्ण आशा के

साथ देर तक करना चाहिये । कभी-कभी तो यह घण्टों तक करना पड़ता है तब स्वाँस आती है । ज्यों ही स्वाँस का आना आरम्भ हो, कुछ गर्म पदार्थ पिलाना चाहिये । निम्बू का रस गर्म पानी में या तज, लौंग और काली मिर्च का काढ़ा पिलाने से बहुत लाभ होगा । तम्बाकू सूँघाने से भी उसे बहुत लाभ पहुँचता है । बेकार आदमी को उसके चारों तरफ नहीं घेरे रहना चाहिये । क्योंकि ऐसा करने से स्वच्छ वायु बीमार को नहीं मिलती । अतः इन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये ।

नीचे लिखे चिन्ह ऐसे रोगी के मर जाने के हैं:—

यदि स्वाँस का आना-जाना रुक जाय, हृदय और फेफड़ों की धड़कन बन्द हो जाय, मोर के पंख को उसके नाक के समीप रखने पर यदि जरा भी न हिले, शीशे को उसके मुँह के पास रखने पर यदि उस पर भाप न जमे, आँखें अधखुली रह जाँय, पलकें मोटी पड़ जायं, अंगुलियाँ टेढ़ी पड़ जायं, जबड़े जुट जायं, जीभ दाँतो के बीच में आ जाय, मुँह में फेन आ जाय, नाक लाल हो जाय और सब शरीर पीला पड़ जाय तो समझना चाहिये कि रोगी मर गया । कभी-कभी इन लक्षणों के होते हुए भी प्राण रहता है । जब उसकी लाश सड़ने लगे तभी उसके मरने का निश्चय होता है । अतः रोगी को जल्दी ही मरा हुआ न समझ लेना चाहिये बल्कि बहुत देर तक उसकी सेवा करने के बाद ही उसकी आशा छोड़नी चाहिये ।

जलना

कभी-कभी हम लोग किसी के कपड़े में आग लग जाने से घबड़ा उठते हैं और उसे सहायता देने के बदले अपनी मूर्खता के कारण उसे और भी विपत्ति में डाल देते हैं । अतः ऐसी अवस्था में हमारा क्या कर्तव्य है यह जानना आवश्यक है ।

जिस व्यक्ति के कपड़े में आग लग गई हो उसे घबड़ाना नहीं चाहिए । यदि आग कपड़े के एक ही किनारे को पकड़ी हो तो उसे शीघ्र ही हाथ से बुझा देना चाहिए । लेकिन यदि समूचे या अधिक कपड़े को पकड़ ली हो तो उसे शीघ्र ही जमीन पर लेट कर लोटने लगना चाहिए । यदि कोई गलीचे जैसा मोटा कपड़ा मिले तो शीघ्र उसके बदन में लपेट देना चाहिए । यदि पानी नजदीक हो तो शीघ्र उसके ऊपर गिरा देना चाहिए । ज्योंही आग बुझ जाय हमें देखना चाहिए कि कहीं उसका अंग तो नहीं जल गया है । जले हुए स्थान में बहुधा कपड़ा लिपट जाता है । ऐसी हालत में हमें उसे जोर लगा कर नहीं छुड़ाना चाहिए । बल्कि धीरे से वस्त्र को कैंची से काट लेना चाहिए ताकि जले हुए स्थान पर कुछ असर न पड़े और वहाँ का चमड़ा न सिमट जाय । इसके बाद शीघ्र ही उस स्थान पर मिट्टी की पुलटिस बांधनी चाहिए । इससे जलन कम होकर रोगी को आराम मिलेगा । जले हुए स्थान पर जहाँ कपड़ा लिपटा हो वहाँ भी पुलटिस बाँधनी चाहिए । जब पुलटिस सूखने लगे तो उसे

तुरन्त बदल देना चाहिए। ठंडे पानी के उपयोग से भी कोई हानि नहीं होती।

जो मनुष्य जलने पर यथा समय उपरोक्त उपचार न कर सके हों, उनके लिए निम्नांकित उपचार बहुत लाभदायक होंगे:—केले के ताजे पत्ते पर जैतून या सरसों का तेल चुपड़ कर जली हुई जगह में बाँधना चाहिए। पत्ते के अभाव में पतले कपड़े का प्रयोग कर सकते हैं। अलसी के तेल में चूने का पानी बराबर मिला कर लगाने से भी लाभ होता है। जले स्थान पर चिपके कपड़े को दूध या पानी से तर करके धीरे २ निकाल सकते हैं। तेल की पहली पट्टी दो दिन बाद हटाना चाहिए और उसके बाद रोज़ बदलना चाहिए। यदि फफोले उठ आये हों तो उन्हें धीरे-धीरे फोड़ देना चाहिए, लेकिन चमड़े को नहीं हटाना चाहिए।

यदि आँच लगने के कारण चमड़ा केवल सुख हो गया हो तो केवल मिट्टी की पुलटिस ही लाभप्रद होगी। यदि अंगुलियाँ जल गई हों तो पुटलिस बाँधते समय इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि वे एक दूसरे से सटी न हों। तेजाब से जले पर भी यही उपचार करना चाहिए।

सर्प का काटना

सर्प के विषय में हम लोगों के भ्रम का कुछ ठिकाना नहीं है। बहुत दिनों से हम लोग इससे डरते आये हैं। यहाँ तक कि उस के नाम को सुनते ही हम काँप उठते हैं। हिन्दू लोग इसकी पूजा करते हैं और इस पूजन के लिए एक खास दिन नियत कर रखे हैं, जिसे नाग पंचमी कहते हैं। उनकी यह धारणा है कि पृथ्वी शेषनाग पर अवलम्बित है। भगवान् विष्णु को शेष-शायी अर्थात् शेष नाग पर सोने वाला कहते हैं। शिव को शेषनाग की ही माला पहने हुए मानते हैं। हम लोग बहुधा ऐसा कहा करते हैं कि अमुक वस्तु का वर्णन सहस्र-मुख वाले शेषनाग से भी नहीं हो सकता है। इससे यह मालूम होता है कि हम लोग शेषनाग को विशेष बुद्धिमान मानते हैं। ऐसा कहा जाता है राजा नल को करकोटक साँप ने काट खाया था जिसके जहर के प्रभाव से वे कुरूप हो गये थे और उन्हें बनवास के समय कोई नहीं पहचान सका था। क्रिश्चियन लोगों के पवित्र एवं धार्मिक पुस्तक बाइबिल में भी कुछ प्रसंग आया है। अंग्रेजी में बहुधा कहा करते हैं कि अमुक आदमी सर्प के मानिन्द चुस्त-चालाक है। बाइबिल में लिखा हुआ है कि “शैतान ने हऊबा बीबी को ललचाने के लिए सर्प का रूप धारण किया था।

साँप से डरने का वास्तविक कारण यह है कि साँप के काटने

से उसका विष शरीर में तुरन्त फैल जाता है जिससे आदमी शीघ्र मर जाता है। चूँकि मृत्यु का नाम ही भयानक है, अतः साँप से हमारा डरना स्वाभाविक है। वास्तव में हम डर ही के कारण सर्पों की पूजा किया करते हैं। यदि वह छोटा जीव होता तो इतना भयंकर होने पर शायद हम उसकी पूजा नहीं करते, लेकिन चूँकि वह एक बड़ा और प्राणघातक जीव है, इसीसे हम उसे पूजते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों का यह कहना है कि सर्प में कोई विशेष बुद्धि नहीं है अतः जहाँ मिले वहीं इसे मार डालना चाहिए। सरकारी गणना से हमें पता चलता है कि साँप के काटने से हर साल हिन्दुस्तान में करीब बीस हजार आदमी मरते हैं। ज़हरीला साँप मारने पर सरकार से इनाम मिलता है। लेकिन हमें यह देखना चाहिए कि इस प्रथा से देश को कुछ लाभ पहुँचा है या नहीं। अनुभव से पता लगा है कि साँप एका एक किसी को नहीं काटता है बल्कि छेड़ने पर ही काटता है। क्या इस से यह सूचित नहीं होता कि साँप में बुद्धि होती है? सम्भव है यह बुद्धि का चिन्ह न माना जाय लेकिन इससे वह निर्दोष अवश्य साबित होता है। अपनी रक्षा के लिए वह अपने दांतों को काम में लाता है। मनुष्य भी बहुधा यही करते हैं। हिन्दुस्तान या किसी देश को साँप-रहित करने का प्रयत्न हवा से लड़ने के समान है। किसी खास स्थान में सर्पों का आना रोका जा सकता है। उन्हें मार डालने पर अन्य साँप वहाँ नहीं

आवेंगे। लेकिन अधिकांश हिस्से में ऐसा नहीं किया जा सकता। हिन्दुस्तान जैसे विशाल देश में सर्पों को समूल नष्ट कर देने का प्रयत्न कभी भी सफल नहीं हो सकता।

हमें कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि सर्पों को भी उसी ईश्वर ने पैदा किया है जिसने हमें और अन्य जीवों को पैदा किया है। हम ईश्वर के सभी कार्यों को नहीं समझ सकते। ईश्वर ने शेर, सर्प, बिच्छू इत्यादि को हमारे मारने के लिए नहीं पैदा किया है। अगर सभी सर्प मिलकर एक सभा करें और आपस में यह तय करें कि आदमी को ईश्वर ने इसी लिए पैदा किया है कि वे जहाँ कहीं भी दिखाई पड़े उन्हें मार डाला जाय क्योंकि वे भी हमारे साथ ऐसा ही करते हैं तो क्या हम लोग कभी इस बात को मानने के लिए तैयार होंगे, कदापि नहीं? इसी तरह हम लोगों की धारणा है कि सर्प मनुष्य के दुश्मन हैं और उन्हें जहाँ पाओ मार डालो।

एसीसी का रहने वाला फ्रान्सिस एक बहुत बड़ा फकीर और योगी हो गया है। वह प्रायः जंगलों में ही रहा करता था और जहाँ जहरीले सर्प तथा भयंकर जानवर रहते थे वहीं घूमता फिरता था। लेकिन कभी किसी सर्प ने उन्हें नहीं काटा और न किसी जंगली जीव ने ही उसे कुछ नुकसान पहुँचाया। फ्रान्सिस का तो यहां तक कहना है कि वे उसके साथ मित्रवत् व्यवहार करते थे। ऐसे ही हजारों फकीर और योगी हिन्दुस्तान के जंगलों में रहते हैं जहाँ शेर, चीते और सर्प बहुतायत से होते हैं। लेकिन

कभी भी यह सुनने में नहीं आता कि वे उन जीवों द्वारा मारे गये हैं। यह कहा जा सकता है कि वे अवश्य मारे जाते होंगे लेकिन चूँकि वे हम लोगों से दूर रहते हैं अतः हम लोग उनके मारे जाने की खबर नहीं सुन पाते। ठीक है, मगर जो योगी जंगलों में रहते हैं उनकी संख्या उन जंगली सर्पों की तुलना में नहीं के बराबर है। यदि वे मनुष्य के स्वाभाविक बैरी होते तो कभी के उनका नाम निशान मिटा दिये होते। खास कर ऐसी अवस्था में जबकि उन योगियों के पास अपनी रक्षा के लिए कोई भी अस्त्र-शस्त्र नहीं रहते। लेकिन हम देखते हैं कि उनका नाश नहीं हुआ है और वे अब भी जंगलों में आराम से रहते हैं। इससे पता चलता है कि यद्यपि वे स्वेच्छापूर्वक जंगलों में विचरते हैं लेकिन कभी किसी से छेड़-छाड़ नहीं करते। इससे मैं इसी परिणाम पर पहुँचता हूँ कि जब तक मनुष्य उनके ऊपर दया नहीं दिखलायेंगे तब तक वे भी उन पर कदापि दया नहीं दिखला सकते। प्रेम मनुष्य की महान शक्ति है। बिना इसके ईश्वर की पूजा भी सार्थक नहीं होती। साराँश यह कि प्रेम ही सब धर्मों की जड़ है।

इसके अतिरिक्त सर्प या अन्य जीवों को क्रूर स्वभाव और उनकी उत्पत्ति को हमी लोगों की क्रूरता का फल क्यों न माना जाय ? क्या हम लोग उनसे कम हिंसक हैं ? क्या हम लोगों की ज़बान उन्हीं के ज़बान जैसी विषैली नहीं है ? क्या हम लोग अपने भाई बन्धुओं का उन्हीं के ऐसा शिकार नहीं बनाते ?

इन सब बातों से यही प्रतीत होता है कि जब मनुष्य दूसरे को नुकसान पहुँचाना छोड़ देंगे, अन्य जीव-जन्तु भी अपनी हिंसक प्रवृत्ति छोड़ देंगे और हमारे साथ मित्रवत् रहने लगेंगे। जब हमारे ही अन्दर सिंह और बकरी की लड़ाई सदैव चलती रहती है तो इसमें क्या आश्चर्य है यदि शरीररूपी संसार में भी ऐसी ही युद्ध हुआ करे। मनुष्य जीवन ही संसार के सब जीवों में आदर्श माना गया है। अतः जब हम लोग अपने स्वभाव को बदल डालेंगे तो दुनिया के सभी जीव भी अवश्य ही अपने स्वभाव को बदल डालेंगे जो मनुष्य अपने भाव को स्वयं बदल लेता है। उसके लिये दुनिया बदल जाती है। ईश्वर की सृष्टि तथा हमारे प्रसन्नता का यही रहस्य है। हमारी प्रसन्नता केवल हमारे ही ऊपर निर्भर करती है और इसके लिए हमें दूसरों पर अवलम्बित नहीं रहना चाहिए।

सर्पों के काटने पर उसके उपचार के विषय में लिखने की अपेक्षा सर्पों के विषय में इतना अधिक लिखने का यही कारण है कि हम लोगों का भय उनसे भिट जाय। यदि इस पुस्तक के पढ़ने वालों में से एक भी—जो मैं अब तक लिखता आया हूँ, उसके अनुसार चलेगा तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा। इसके अतिरिक्त इतने पृष्ठों के लिखने का मेरा मतलब केवल वैज्ञानिक कल्पनाओं को ही दर्शाना नहीं है, बल्कि उसके मूल-तत्त्व को ढूँढ़ना है और लोगों को आरोग्य-सन्देश देने पर विचार करना है।

आधुनिक आविष्कारों से भी पता चलता है कि उस मनुष्य पर, जो पूर्ण स्वस्थ है, जिसका खून गर्म है और जिसका भोजन साधारण तथा सात्विक है, साँप का जहर जल्दी असर नहीं करता। जिसका खून दूषित और भोजन सात्विक नहीं है उस पर जहर का असर शीघ्र होता है। एक डाक्टर का कहना है कि जो मनुष्य नमक नहीं खाता और जिसका मुख्य भोजन फल है, उसका खून इतना स्वच्छ होता है कि उसके ऊपर किसी भी विष का असर नहीं पड़ता। लेकिन मुझे स्वयं इस बात का अनुभव नहीं है कि यह कहाँ तक सत्य है जिस मनुष्य ने केवल एक-दो वर्ष से नमक खाना छोड़ दिया है उसका खून इस योग्य नहीं हो सकता, क्योंकि पहले के खाये हुए नमक से उसका खून इतना दूषित हो गया रहता है, जो केवल इतने थोड़े दिनों के नमक परित्याग से शीघ्र शुद्ध नहीं हो सकता।

वैज्ञानिक दृष्टि से देखा गया है कि जिसे अधिक भय या क्रोध हो जाता है, उस पर विष का प्रभाव भी शीघ्र पड़ता है। सभी जानते हैं कि डर या क्रोध की अवस्था में मनुष्य की नाड़ी और हृदय में पहले की अपेक्षा अधिक धड़कन पैदा हो जाती है और नसों में खून का दौरा वेग से होने लगता है। वेग से दौरा होने के कारण खून में अधिक गर्मी पैदा हो जाती है। जिससे मनुष्य के स्वास्थ्य पर धक्का पहुँचता है। क्रोध वास्तव में एक प्रकार का ज्वर है। अतः साँप के विष की सब से उत्तम औषधि कम मात्रा

बिकता है और जिसे परमेगनेट आफ पोटाश कहते हैं उसी को भर देना चाहिए। यदि यह नहीं मिले तो खून को स्वयं या किसी की सहायता से मुँह से चूस कर निकाल देना चाहिए। जिसके होंठ या जीभ पर घाव हों उसे नहीं चूसना चाहिए। यह उपचार काटने पर सात मिनट के अन्दर २ करना चाहिए जिससे ज़हर बदन में नहीं फैलने पावे। जैसे कि पहले ही बताया गया है कि एक जर्मन डाक्टर का जो इस रोग के लिए सिद्धहस्त माना जाता है कहना है कि रोगी को ताज़ी मिट्टी से ढक देना चाहिए। यद्यपि मिट्टी के पुलटिस का प्रयोग मैंने इस विषय में नहीं किया है फिर भी उसमें मेरा पूर्ण विश्वास है, क्योंकि इसके लाभ को मैं अन्य रोगों में भी अनुभव कर चुका हूँ। पोटाश लगाने या खून चूसने के बाद मिट्टी की पुलटिस, जो आधी ईंच मोटी हो, बाँध देना चाहिए। हर एक घर में अच्छी पिसी और सुखाई हुई मिट्टी एक टिन में प्रयोग के लिए तैयार रखनी चाहिए। इसे इस प्रकार रखे कि इसमें सूर्य की धूप और हवा लगती रहे और नर्म न होने पावे। पट्टी के लिए कपड़ा भी रखना चाहिए ताकि जब आवश्यकता पड़े तुरंत मिल जाय। यह केवल साँप के काटने पर ही काम न देगा बल्कि अन्यान्य रोगों में भी काम देगा।

यदि रोगी बेहोश हो गया हो या उसका स्वाँस चलना बन्द हो गया हो तो स्वाँस संचार करने की क्रिया जो डूबने के विषय में बतलायी गयी है काम में लानी चाहिए। गर्म पानी, तज और लौंग का काढ़ा होश में लाने के लिए बड़ा उपयोगी होता है।

में सात्विक भोजन, बुरे भाव जैसे क्रोध-भय का परित्याग और ईश्वर पर पूर्ण भरोसा रखकर उचित उपचार करना ही है।

पोर्ट-एलिजावेथ अजायब घर के डाइरेक्टर फिट्जसीम जिन्होंने अपना अधिकांश समय सर्पों के विषय में जानकारी प्राप्त करने में व्यतीत किया है और जो इस विषय के ज्ञाता कहे जाते हैं, उन्होंने साफ २ बतला दिया है कि साँप के काटे मनुष्यों की मृत्यु अधिकांश में उनके भय और अनुचित औषधियों के प्रयोगसे होती है।

हमें याद रखना चाहिए कि सभी सर्प एक जैसे विषैले नहीं होते और न सभी विषैले सर्पों के काटने से विष का शीघ्र प्रभाव ही होता है। इसके अलावा काटते समय इतना अवकाश सर्पों को नहीं मिलता कि वे रोगी के शरीर में अपने विष की थैली को उड़ेल दें। इसलिए यदि हमें जहरीला साँप भी काट ले तो हमें डरना नहीं चाहिए, क्योंकि उसकी औषधि बहुत ही लाभप्रद और सुलभ है, जिसका प्रयोग हम बिना किसी की सहायता के स्वयं कर सकते हैं।

जिस स्थान में साँपने काटा हो उससे थोड़े ऊपर खूब खींच कर बाँध देना चाहिए और एक लकड़ी या मजबूत पेन्सिल से बल दे देना चाहिए। ऐसा करने से विष शरीर में फैल नहीं पाता। तब एक पतले बारीक चाकू से उस स्थान को आध ईंच गहरा काट देना चाहिए ताकि विषैला खून बाहर निकल आवे। इसके बाद काटे हुए स्थान में लाल या काला पाउडर जो बाजारों में

बिकता है और जिसे परमेगनेट आफ पोटाश कहते हैं उसी को भर देना चाहिए। यदि यह नहीं मिले तो खून को स्वयं या किसी की सहायता से मुँह से चूस कर निकाल देना चाहिए। जिसके होंठ या जीभ पर घाव हों उसे नहीं चूसना चाहिए। यह उपचार काटने पर सात मिनट के अन्दर २ करना चाहिए जिससे जहर वदन में नहीं फैलने पावे। जैसे कि पहले ही बताया गया है कि एक जर्मन डाक्टर का जो इस रोग के लिए सिद्धहस्त माना जाता है कहना है कि रोगी को ताजी मिट्टी से ढक देना चाहिए। यद्यपि मिट्टी के पुलटिस का प्रयोग मैंने इस विषय में नहीं किया है फिर भी उसमें मेरा पूर्ण विश्वास है, क्योंकि इसके लाभ को मैं अन्य रोगों में भी अनुभव कर चुका हूँ। पोटाश लगाने या खून चूसने के बाद मिट्टी की पुलटिस, जो आधी ईंच मोटी हो, बाँध देना चाहिए। हर एक घर में अच्छी पिसी और सुखाई हुई मिट्टी एक टिन में प्रयोग के लिए तैयार रखनी चाहिए। इसे इस प्रकार रखे कि इसमें सूर्य की धूप और हवा लगती रहे और नर्म न होने पावे। पट्टी के लिए कपड़ा भी रखना चाहिए ताकि जब आवश्यकता पड़े तुरंत मिल जाय। यह केवल साँप के काटने पर ही काम न देगा बल्कि अन्यान्य रोगों में भी काम देगा।

यदि रोगी बेहोश हो गया हो या उसका स्वाँस चलना बन्द हो गया हो तो स्वाँस संचार करने की क्रिया जो डूबने के विषय में बतलायी गयी है काम में लानी चाहिए। गर्म पानी, तज और लौंग का काढ़ा होश में लाने के लिए बड़ा उपयोगी होता है।

उपसंहार

स्वास्थ्य के विषय में मुझे जो कुछ कहना था वह कह चुका। अब इसे समाप्त करने से पहले इस पुस्तक के लिखने के मुख्य उद्देश्य को विस्तृत रूप से बतलाता हूँ।

इस पुस्तक को लिखते समय मैंने इस प्रश्न पर बार-बार विचार किया कि इसे मैं क्यों लिख रहा हूँ। मैं कोई डाक्टर नहीं हूँ और न मुझे इन विषयों का यथेष्ट ज्ञान ही है। अतः अधिक सम्भव है कि मेरे विचार अधूरे रह गये हों।

इसका उत्तर यही हो सकता है कि वैद्यक विद्या की रचना ही अधूरी है। इसके अधिकांश विषय काल्पनिक ही है। ये प्रकरण निःस्वार्थ भाव से लिखे गये हैं। रोगों के उपचार की अपेक्षा उनके जड़ को अंकुरित न होने देने की इसमें अधिक चेष्टा की गई है। थोड़ा सा उद्योग करने से मालूम हो जायगा कि रोगों की उत्पत्ति को रोक देना एक साधारण-सी बात है। इसमें अधिक जानकारी की आवश्यकता नहीं। हाँ, इतना अवश्य है कि उनका अभ्यास कुछ कठिन है। हमारा मुख्य उद्देश यही है कि रोगों की उत्पत्ति के कारण एवं उपचार का पता लगाया जाय ताकि आवश्यकता पड़ने पर सब लोग स्वयं उसको कर सकें, यों तो स्वास्थ्य के नियमों को पालन करने की थोड़ी-बहुत जानकारी सभी को होती है फिर भी यदि उसमें हमारा भी अनुभव शामिल कर लिया जाय

तो कोई हानि नहीं होगी ।

फिर भी अच्छे स्वास्थ्य की क्यों आवश्यकता है ? इसके लिये हम इतना चिन्तित क्यों रहते हैं ? हम लोगों की साधारण रहन-सहन से यही प्रतीत होता है कि हम लोग अपने स्वास्थ्य और उतना ध्यान नहीं देते जितना कि हमें देना चाहिये । यह निर्विवाद है कि शरीर को सर्वोपरि समझना, सुख-चैन करना और उसके ऊपर गर्भ करने को ही अगर स्वास्थ्य रक्षा का मुख्य अभिप्राय समझा जाय तो इससे तो अच्छा यही होगा कि इस में पित्तादि विकार भरे पड़े रहें ।

सभी धर्म वाले इस बात को मानते हैं कि हम लोगों का शरीर ईश्वर का वासस्थान है, तथा इसी के द्वारा हम उसे प्राप्त कर सकते हैं । अतः हमारा कर्तव्य है कि जहाँ तक हो सके इसे बाहर तथा भीतर से स्वच्छ एवं कलंक रहित रखा जाय ताकि समय आने पर हम इसे उसी पवित्र अवस्था में ईश्वर को सौंप सकें । जिस अवस्था में हमने इसे प्राप्त किया था । यदि हम इस नियम का भली-भांति पालन करें तो ईश्वर प्रसन्न होकर अवश्य ही हमें इसका प्रतिफल देगा और हमें अपना सच्चा पुत्र समझेगा ।

ईश्वर ने सभी जीवों की आकृति प्रायः एक-सी ही बनाई है यानी सबों में देखने, सुनने, खाने-पीने, गन्ध लेने और भोग करने की शक्ति एक सी है; लेकिन मनुष्य शरीर सब में श्रेष्ठ है इसी कारण हम इसे 'चिन्तामणि' अथवा सभी वस्तुओं को प्राप्त कराने वाला कहते हैं । केवल मनुष्य ही ज्ञान द्वारा ईश्वर की

उपासना कर सकता है। ज्ञान-हीन उपासना से मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती और बिना मुक्ति से सच्चा आनन्द नहीं मिल सकता।

हमारा स्थूल शरीर तभी सार्थक हो सकता है जब कि हम इसे ईश्वर का मन्दिर मानेंगे एवं उसी की आराधना के लिए इसे अर्पित कर देंगे। यह रक्त, माँस और हड्डियों के अलावा और कुछ भी नहीं है और इससे जो मल-मूत्र निकलता है सिवाय विष के और कुछ नहीं है। जो गन्दगी हमारे शरीर से निकलती है, उसे छूना तो दूर रहा, हम उसे ध्यान में भी नहीं लाते। इस शरीर का पालन करने के लिए हम झूठ बोलते हैं, विश्वासघात करते हैं, एवं इस से भी अधिक बुरे कर्मों को करते हैं। यह कैसी लज्जा की बात है कि हम इन कुकर्मों को करके इस नश्वर शरीर की रक्षा करते हैं।

जिस चीज में गुण होता है उसमें अवगुण का होना भी अनिवार्य है। यही दशा हमारे शरीर की भी है। यदि ऐसा न हो तो एक के बिना दूसरे का मूल्य ही नहीं हम समझ पावें। सूर्य जिसके ताप और प्रकाश में इसविश्व के जीवन का आधार है सभी वस्तुओं को जलाकर चार कर देने की भी शक्ति वर्तमान है। ऐसे ही एक राजा अपनी प्रजा की उन्नति एवं अवनति दोनों का ही कारण हो सकता है। इसी प्रकार यदि हम अपने मन पर अंकुश रखें तो यह शरीर सार्थक है अन्यथा निरंकुश होने से ही वह पतित अवस्था को प्राप्त होकर निरर्थक हो जाता है। कहा भी गया है कि “मन एवं मनुष्याणाम् कारणम्”

बन्ध मोक्षयः” अर्थात् मनुष्य का मन ही उसके मोक्ष तथा बन्धन दोनों का कारण होता है।

हम लोगों के शरीर में अन्तरात्मा और कुवृत्ति (पाप) दोनों में सदैव संघर्ष हुआ करता है। इधर अन्तरात्मा शरीर पर अपना अधिकार जमाना चाहती है और उधर पाप रूपी शैतान उसे अपने वश में करना चाहता है। यदि अन्तरात्मा की विजय हुई तब तो यह शरीर दिव्य होकर रत्नों की एक खान बन जाता है और यदि शैतान की विजय हुई तो यह महा पापों का घर बन जाता है। ऐसा शरीर साक्षात् नर्क के समान है, जिसमें सड़ने गलने वाले पदार्थ भरे जाते हैं। जिससे दुर्गन्ध पैदा होती है, जिस के हाथ पाँव सदैव बुरे कर्मों को करते हैं, जिह्वा ऐसे पदार्थों का स्वाद चाहती हैं जिसे नहीं खाना चाहिए और वह सदैव ऐसी वाणी बोलती है जिसे नहीं बोलना चाहिए। उसकी आँखें ऐसी वस्तुओं को देखना चाहती हैं जो देखने योग्य नहीं हैं। उस के कान ऐसे शब्दों को सुनना चाहते हैं जो सुनने के योग्य नहीं और नाक ऐसे गन्ध को चाहता जो सूँघने योग्य नहीं। फिर भी लोग नर्क को तो भूल कर स्वर्ग नहीं कहते। लेकिन ऐसे शरीर को जो नर्क से भी बुरा है स्वर्ग के मानिन्द समझते हैं। इसके सम्बन्ध में हमारे विचार कैसे पतित हैं और हमारा गर्व कैसा घृणित है। पाखाना को पाखाना और महल को महल की दृष्टि से देखना चाहिए। ठीक यही अवस्था हमारे शरीर की है। शरीर को अन्तरात्मा के वश में रख कर कुवृत्तियों के वश में रख कर

आरोग्य की इच्छा करने के बदले उसके नाश की ही इच्छा सुर कर है ।

आरोग्य के सम्बन्ध में मैं सदा ही कहता आया हूँ कि वास्तविक स्वास्थ्य हम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब कि हम लोग उसके नियमों का सच्चे रूप में पालन करेंगे । बिना स्वास्थ्य के सच्चा सुख नहीं प्राप्त हो सकता और हम तभी स्वस्थ हो सकते हैं जब हम अपने जिह्वा को वश में करें, जब हम अपने खाद्य पदार्थ में सावधानी रखेंगे तो अन्य इन्द्रियाँ आप ही आप दमन हो जावेंगी । जिसने अपने इन्द्रियों को वश कर लिया है उसने वास्तव में संसार को वश में कर लिया है और वह ईश्वरीय अंश हो जाता है । लेकिन रामायण से राम, गीता से कृष्ण, कुरान से खुदा और बाइबिल ईसा मसीह नहीं प्राप्त हो सकते । वे तो तभी मिलेंगे जब हम वैसा आचरण करेंगे । सत् कर्मों पर सच्चरित्रता अवलम्बित है और सत् कर्म सत्य पर निर्भर हैं । अतः सत्यता ही सब का मूल है । यही हमारे सत् कर्मों एवं सफलता की कुंजी है । यदि हम इन प्रकरणों के आधार पर थोड़ा भी सत्य के प्रेमी बनें तो इस पुस्तक के लिखने का परिश्रम मैं सफल समझूँगा ।

1

2

3

4

1950

SEP 1

5

6

13

